हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-सीरीज ७२

परख

[मौलिक उपन्यास]

लेखक :
जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर (प्राइवेट) लिमिटेड, बम्बई.

लेखकके कुछ शब्द

इस किताबके बारेमे मुझे कुछ शब्द कहने हैं। खुद किताबसे शायद ये शब्द ज्यादा क़ीमती हो। इसलिए ज्यादा सतर्क होकर और ज्यादा निश्चयसे मै उन्हे कहूँगा।

मैने इसमे काफी स्वतन्त्रतासे काम लिया है। पर, विश्वास है, उसका दुरुपयोग नहीं किया। जो दुरुपयोग नहीं करता उसके हाथमे मै ज्यादेसे ज्यादे स्वतन्त्रता देनेसे नही डरता। जो जानता है, स्वतन्त्रता बड़ी क़ीमती चीज है, उसका अपव्यय और उसका कदर्य उपयोग करना मानों उसकी हत्या करना है, वह स्वतन्त्रता अपनायेगा तो उसे कोई नही टोक सकेगा। मै यही कहता हूँ।

क्या कहूँ, और कैसे कहूँ,—इन दोनों बातोंमें मैने किसी नियमको सामने नहीं रक्खा है। हाँ, लेखकके दायित्वको और स्वतन्त्रताके मूल्यको प्रत्येक क्षण सामने रक्खा है। मैने सदा ध्यान रक्खा है, जो दूँ उसमें अपनेको धोखा न दूँ, और दुनियाको धोखा न दूँ। लेखकका काम बड़ी जोखिमका है, मै समझता हूँ, इस किताबमें मै उसे कहीं नहीं भूला हूँ।

न भाषाका शिकजा है, न भावका। दोनों किसी कोडके नियमोमे बँधकर नहीं रह सकते। जिसे बढ़ना है, वैसी कोई भी चीज शिकजेमें किसी नहीं रह सकती। शिकंजेमे कस दोगे तो वह नही बढेगी, लुंज रह जायगी,—हम उसीको सुन्दरता मानने लग जायँ तो बात दूसरी, पर, दुनियाकी स्पर्धा और दौड़में वह कहीकी नहीं रह सकती। जैसे चीनी स्त्रियोंके पैर। हिन्दी-भाषा-भाषियो और भाषा-लेखकोंको यह सत्य, पूरे हर्षसे और बिना ईर्ष्याके, मान लेना और अपना लेना चाहिए। भाषाका, और दुनियाका हित इसीमें है।

उपन्यासमें जैसी दुनिया है वैसी ही चित्रित नहीं होती। दुनियाका कुछ उठा हुआ, उन्नत, कल्पित रूप चित्रित किया जाता है। वह उपन्यास किसी कामका नही, जो इतिहासकी तरह घटनाओंका बखान कर जाता है। कामसे मतलब, वह दुनियाको आगे बढाने और बढ़नेमें जरा मदद नहीं देता। क्योंकि न वह इतिहास होता है, न उपन्यास ही। इतिहासका अपना मूल्य है। वह

विश्वकी प्रगतिके मार्गका नक़शा हमारे सामने रखता है। इसी तरह साहित्यके हर ' प्रकार ' का अपना मूल्य है। उपन्यासका काम है, कुछ आगेकी,–भविष्यकी सभावनाओकी ज़रा झॉकी दिखाना और जो कुछ अब है, उसकी तह हमारे सामने खोलकर रख देना। उपन्यास एक नये, अजीब ही ढॅगसे रॅगे और उपादेय जीवनका चित्र हमारे सामने रखता है। जीवनके साधारण कृत्य और उलझी गुत्थियोंको सुलझाकर और खोल-खोलकर रख देता है। उपन्यास, इस तरह, सत्यमें स्वप्नकी पुट देकर, वास्तवमें कल्पना मिलाकर, व्यवहारसे आदर्शका साम्य और सामंजस्य स्थापित कर, और वर्तमानपर भविष्यका रॅग चढाकर जीवनका वह रूप पेश करता है जो जीवनसे मिलता जुलता है, फिर भी अनोखा है, जिससे मनोरंजन भी प्राप्त होता है और शिक्षा भी, और जिससे हठात्, एक नई चीज़ हृदयमे पैठ जाती है और हम ज़रा आगे बढ जाते हैं। हमें मालूम भी नही होता, पर एक संस्कार,—एक नई बात धीरे धीरे उगना आरम्भ हो जाती है। वह शिक्षा और वह नई चीज अमुक शब्दो और वाक्योंमें नही होती, उपदेशात्मक नहीं होती, बहुत अधिक प्रकट और विवेचन-गम्य नही होती। और वह बहुत कम विश्लेषण और मस्तिष्ककी पकड़मे आ पाती है। चित्रमें भावकी तरह वह सारी कृतिमें रमी रहती है। मस्तिष्ककी विवेचनाको पार कर हृदयकी अनुभूतिमे सीधी जाकर ऐसी चुभती है कि चाहे मस्तिष्क बौखलाता ही रह जाय, हृदय हिल जाता है। मस्तिष्क उसका उद्देश्य ढूंढने और पकडनेमें ही उलझा रह जाता है, उधर व्यक्तिको कुछ क्षणकी तन्मयता,—एक आनन्द, रस, एक शक्ति, एक प्रकारकी आत्मानुभूति प्राप्त हो चुकी होती है। जो तीरकी तरह अन्तः तक जा लगे, बुद्धिके पटल और जालको भेदकर मर्ममें घुस जाय, और हलचल उपस्थित कर दे, वह,—विद्वान् चाहे कितना ही उसे पहेली कहें, विद्वत्ता उसका मतलब (What it means) समझनेमें कितनी ही अकृत-कार्य रहे, और वहाँ उद्देश्यका कितना ही अभाव दीखे,—वह सच्ची चीज है, उपादेय है, और वह जीने और जिलानेके लिए आई है। वह कला है। अर्थ अर्थी जगत् अपनी ' उद्देश्य-पूर्णता ' की परिभाषाके घेरेमें उसकी उपयोगिताको न बॉध पाये, इसमे अचरज नहीं। प्रत्युत् यह तो बिलकुल स्वाभाविक और संभवनीय है। पर इससे जगत्को चिढ़ना न चाहिए, न हठात् उस कलाको निर्वासित और संकुचित करनेकी कोशिश करनी चाहिए। इससे

उसकी उपयोगिता न कम वेगवती होती है न कम मूल्यवती, और न ही कम आदरणीय।

कलाविदों और संपादक-कोविदोंकी छानबीनके लिए ये शब्द, जरूरी समझकर और झिझकते मनसे, उनकी सेवामे पेश कर दिये जाते हैं।

मैने जगह जगह कहानीके तारकी कड़ियॉ तोड़ दी हैं। वहॉ पाठकको थोड़ा कूदना पड़ता है। और मै समझता हूॅ, पाठकके लिए यह थोड़ा आयास वांछनीय होता है,—अच्छा ही लगता है।

कहीं एक साधारण भावको वर्णनसे फुला दिया है, कहीं लम्बा-सा रिक्त (Gap) छोड़ दिया है; कही बारीकीसे काम लिया है, कही लापर्वाहीसे; कही हलकी धीमी कलमसे काम किया है, कहीं तीक्ष्ण और भागतीसे। मैं समझता हूॅ, यह सब कुछ चित्रमें खूबी और असलियत लानेके लिए जरूरी हो पड़ता है। यह कम-ज्यादे रंगकी शोभा रंग बिरंगेपनमें और स्वाद देती है।

एक और भी बात है। सभी पात्रोंको मैंने अपने हृदयकी सहानुभूति दी है। जहॉ यह नहीं कर पाया हूॅ, उसी स्थलपर, समझता हूॅ, मै चूका हूँ। दुनियामें कौन है जो बुरा होना चाहता है और कौन है, जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही हैं, देवतासे कम ही और पशुसे ऊपर ही। इस तरह किसे अपनी सहानुभूति देनेसे इन्कार कर दिया जाय?

पाठकोंसे एक विनय है। मुझे भी वह अपनी सहानुभूति देते रुकें नहीं। सफल हूॅ तो, असफल हूॅ तो, उनकी सहानुभूति मुझे चाहिए ही। क्योंकि मै जानता हूॅ, मै क्या हूॅ।

पहाड़ी धीरज, दिल्ली
१९-१०-२९

जैनेन्द्रकुमार

दूसरे संस्करणके समय

सन् २९ से अब ४१ आ गया है। एक खासा अरसा हो गया। अब सूरतें बदल गई हैं। जग बदला, मैं भी बदला हूँगा। यह पुस्तक देखते समय जी किया कि अगर इसे इन्कार न करूँ तो यहाँसे वहाँ तक उसे बदल तो दूँ ही। पर यह मै नहीं कर सकता था। इससे जहाँ तहाँ उसे छुआ भर है, विशेष फेरफार नहीं किया है।

पहले संस्करणके समयके अपने आरम्भिक वक्तव्यसे आज मैं अप्रसन्न हूँ। पर क्या करूँ ? आजका सच बीते कलके निषेधपर नहीं, स्वीकारपर ही कायम हो सकता है।

दरियागंज, दिल्ली
२३-१-४१

जैनेन्द्रकुमार

परख

१

वकालत पास तो की, पर शुरू न की। इसके दो कारण हुए। बी० ए० पास करनेके बाद टाल्स्टाय, रस्किन, गाँधी या जाने किसका एक विचार-स्फुलिंग इनके जवानीके तेज़ खूनमे पड़ गया था। उस वक्त तो सामने एल-एल० बी० की पढाई आ गई, उसे पढ़ने और पास करनेकी फ़िक्रमें लग जाना पड़ा, इससे कोई ख़ास फल दिखाई न दिया। पर वकालतका इम्तहान देकर, शहरके कोलाहल और व्यस्ततासे दूर, अपने गाँवमें जब आये और जीवन-क्षेत्रमें कदम रखनेकी बाते सोचने लगे, तो वह स्फुलिंग भी चेता। अब तक भीतर ही भीतर वह इनके खूनमें अपना ज़हर काफ़ी फैलाता रहा था। वक्त आया तो अपनी गर्मीसे इन्हें दहका दिया। सोचा—वकालतमें क्या है? अपने देशका सत्यानाश है, और अपनी आत्माका सत्यानाश है।

एक दूसरी बात और हो गई जिसने इनके इस विचारपर मोहरका काम दिया। गाँवमें इनकी थोड़ी जमींदारी थी, प्रतिष्ठा भी थी। इनकी सहृदयतासे भी आस-पासके लोग परिचित थे। अपने जीकी सुनाने इनके पास आ जाया करते थे। एक इन्होंने ऐसी बात सुनी कि तैशमें आ गये और इन्हे एक जोखमका कर्तव्य सामने दिखाई देने लगा।

मुंशी होशियार बहादुर ज़िलेके नामी-गिरामी वकील थे। आमदनी

खूब थी। दबदबा भी खूब था। एक मवक्किलने आकर इनकी बदनीयतीका हाल सुनाया।

फौजदारीका मुकद्दमा था। मवक्किल बड़ी आफतमें था। मुंशीजीने आस बँधाई, ढाढ़स दिलाया और मेहनताना कसकर लिया। पीछे कहीं याद न रहे इससे मेहनताना पेशगी ही दे देना अच्छा होता है। कुलका कुल पेशगी दे दिया गया।

पर वकील साहब तारीख़पर गैरहाजिर थे। तारीखे दो बदलीं, तीन बदलीं, पर वकील साहबको किसीपर मौजूद होनेकी फुर्सत न मिल सकी। आखिर एक तारीख और दी गई। अबकी वकील साहब जरूर पहुँचते, पर क्या किया जाय, एक पार्टी आ गई। पार्टीमे शरीक न हों तो कैसे हो!

वह तो खैर हुई कि मवक्किलने जाने क्या सोचकर एक और वकील कर लिया था, नहीं तो न जाने क्या होता!

जब मवक्किल गिड़गिड़ाता वकील साहबकी कोठीपर पहुँचा तो उसे निकलवा दिया गया। कुछ कहा गया तो जवाव दिया गया—रुपये!—अगर बन सके तो वसूल कर ले।

पर वसूल कैसे कर ले? मगरसे बैर कर तो जलमेंसे वसूल गये नहीं जा सकते। और इस तरह जब अदालतकी ही राह बन्द हो तो गरीब बेचारा क्या करे?

सुनकर हमारे इन महाशयने निश्चय किया, वकील साहब होशियार बहादुरको सबक़ सिखायेंगे।

कुछ रोज़ बाद कामसे, ज़िलेके शहरमे जाना हुआ। मुन्शी होशियार बहादुर बार-रूममे आराम-कुर्सीपर पड़े, गप लड़ा रहे थे। वकील उन्हें घेरे बैठे थे।

सत्यधन घुसे। (हमारे महाशयने आदर्शकी झोंकमें अपना नाम सत्य-धन रख छोड़ा है।) पैरोंमें धूलसे भरा चरमराता हुआ देशी जूता, मोटा टुकडीका कुर्ता; सरपर मटमैली बेढंग टोपी।

वकीलोंने सिर उठाया।—कैसा बेहूदा-सा आदमी है।

होशियार बहादुरको पहचानता तो सत्यधन था ही। सीधे फटकार बतानी शुरू की। जब आदमी अँग्रेजी बोल रहा है और निपट गँवार मेसमे है,—तब किसकी हिम्मत हो कि न अचकचाये। बातके अतिरिक्त, ऐसी हालतमे, और कुछ उपाय हाथमें ले लेनेका सूझ ही नहीं सकता। सत्यधनका भरा हुआ गुस्सा चुक चुकनेपर होशियार बहादुरने कहा—आप क्या हैं?

स-यधनने तनकर कठा—मै भी वकालत पास कर चुका हूँ—

सत्यधनकी आदर्श-भक्तिमें शायद वकालत पास होनेके अहंकारको स्थान था।

होशियार बहादुरने मिठाससे कहा—ओ हो, तो आप मेरे नज़दीकी हैं। तैशमे न आयें, यह पेशा ऐसा ही है।

"अपना कुसूर पेशेपर मत टालिए।"

"ओ हो! तो आप ईमानदार वकील बनेंगे? तब तो म्यूजियमके लायक होंगे आप। क्योंकि अभी तक ऐसा जानवर देखा नहीं गया।"

सत्यधनका गुस्सा उबल रहा था और बल खा रहा था।

"मै कहता हूँ...."

"देखो साहब, यह कहते हैं..."

"मै कहता हूँ...." बात झड़पकर सत्यधनने कहा।

छँटे वकीलने उड़ाते हुए कह दिया—कहते हो अपना सिर, और क्या कहते हो!

"मै कहता हूँ, सच...."

"उससे वकीलको ताल्लुक नहीं । तुम अभी जानते नहीं, बच्चे हो। या तो युधिष्ठिर ही बन लो, या वकील ही बन लो। सच बोलनेकी कहते हो तो झूठ कहते हो।"

झूठ! ऐसा शब्द सत्यधनके खिलाफ! उसने एक ही झटकेमे बिना अटके कह दिया—

"झूठके बिना वकालत नहीं, तो मै वकालत करता ही नही! जाओ। मै केस .."

"बस काफी है। यह ठीक है।"

इतने बहुतसे लोगोंमे की प्रतिज्ञा उनके सिरपर पड़ गई। तब अपने आदर्शके चिंतनकी धुनमे किए कोरे विचार अपने आप निश्चयका रूप धरने लगे और इस प्रतिज्ञाकी जबरदस्तीकी मुहर लगवाकर बाजारमे आने लगे।

वकालत न करनेकी बात जब टकसाली होकर बाज़ारमे यों फैल गई, तो अब क्या किया जाय? पढ़े-लिखे पेटके प्रश्नकी ओरसे थोडे-बहुत निश्चिन्त इस युवकके लिए बस अब एक काम रह गया आदर्श-आराधन।

तन-मनसे यह आराधना उन्होंने आरंभ की। सोचनेका अपने पीछे व्यसन लगाया, उसके नशेमे अपनेको भूल जानेकी क्षमता भी पैदा की

कुछ पागल बनना भी शुरू किया। जैसे—

एक रोज बेकनकी किताब पढ़ रहे थे। पढते पढते रुके। जैसे विचारधाराको कहीं कुछ झटका लगा, और उसका उलझा और रुका हुआ प्रवाह खुलकर बह चला। थोडी देर बाद मानो फिर वह एक रोकपर आ गया। तब किताबका वह पन्ना उन्होंने फाड़ लिया।

फिर तो उस पन्नेपर काफी दिक्क़त उठाई गई । ढूँढ़-ढाँढकर एक सफ़ेद कागज निकाला, नापकर उसके बराबर काटा, ज्यों त्यों कर कहींसे लेही लाये, और उसे फटे पन्नेपर चिपकाया । और उसपर सुन्दर सुन्दर अक्षरोंमे लिखा—

" यह दुनिया एक है । अनेकों,—ऐसी ऐसी असंख्य दुनियाओंमेंसे एक है । मै उसपरका एक नगण्य बिंदु हूँ ।—फिर अहकार कैसा ? "

" यह काल कबसे चला आ रहा है,—कुछ आदि नही । कबतक चला चलेगा,—कुछ अन्त नहीं । इस अनादि-अनत काल-सागरके विस्तारमे मेरे सादि-सान्त जीवन-बुदबुदकी भी क्या कुछ गणना है ? इन ५०–६०–१०० सालोंकी भी कुछ गिनती है ! .. फिर भी जीवनका मोह !....छि ! "

" इन ५०–६०–१०० सालोंकी, और मेरे अस्तित्वके इस नगण्य बिंदुकी क्या उपयोगिता है ? .. इस बे-ओर-छोरके ब्रह्माण्डकी स्कीममे इस मेरे तुच्छ अहंकारकी क्या सार्थकता है ? "

इसके नीचे तनिक मोटे अक्षरोंमे लिखा—

" अपना सब कुछ मिटाकर इस स्कीममे विलय हो जाना जिससे मेरे जैसे और बुदबुदोको अवकाश मिले ।—धरतीमे गडकर धरतीके तलको ज़रा ऊँचा कर जाना । भविष्यकी पुष्टिके लिए अपने जीवन और वर्तमानको स्याह कर जाना । "

लिखकर उसे फिर पढा । जितना ही पढते उतना ही उन्हें उसका स्वाद आता । यह लिखनेके लिए मानो अपनेको मन ही मन धन्यवाद देना चाहते थे ।

सत्यधनके माँ ही माँ है । पिता नही है, न और कोई सगा है । बहन है बड़ी, जो बालबच्चे-दार है । इस तरह वह लगभग सब

ओरोंके उत्तरदायित्वसे निश्चिन्त है। शादी उसकी नहीं हुई। रिश्ते तो बहुत आये, पर शेक्सपीयरकी नायिका बनने योग्य उनमे कोई न थी, इससे स्वीकार नहीं किये। इस तरह बी० ए० भी हो गया, एल-एल० बी० भी गुजर गया, और अब यह आदर्श क्रान्तिका जमाना आ गया।

अब तक सजधज, ठाट बाट और प्रतिष्ठाके एवरेस्टपर पहुँचे हुए असाधारण जीवनके स्वप्न देखते थे, अब सोचने लगे, फूटे-टूटे मैले, बेहाल, हीन, अपरिचित, अज्ञात और साधारण रहकर ही जीवनकी क्यों न पूरी तुष्टि प्राप्त कर ली जाय? अब उन्होंने अपने मार्गके किनारे खडे ' पोष्टों ' परसे ' उन्नति ' मिटाया और ' उत्सर्ग ' लिख लिया। अब शेक्सपीयरकी नायिकाकी जगह किसी सकुचाई-सी गँवई किशोरिकाको घरमें ले आकर प्रतिष्ठित करना ज्यादे प्रिय लगने लगा, जो अभी जीवनके साथ शिक्षाकी और सभ्यताकी बहुत-सी व्यर्थताएँ लपेटना न सीखी हो, जो सीधी-सादी, सच्ची, भोली, तिरस्कृता जिसे इनकी आवश्यकता हो और जिसे सुखी बनाकर यह समझें ' हाँ, मैने कुछ किया '। जिसे कुलका और पैसेका दर्प न हो, और जो अपने पतिदेवमें अपना सारा दर्प और गौरव केन्द्रित कर उनकी पूजा कर सके।

विवाहसम्बन्धी विचार जब यह रुख पकड़ रहे थे तभी एक लड़की अजीब ढंगसे इनके जीवनमें अनजानेमें ही हिल-मिल जा रही थी।

यह लड़की इनके ही गाँवकी है। पड़ौसमे ही घर है। गाँवका पड़ोस शहरके पड़ौस जैसा तो होता नहीं, इसलिए वह मानों इनके घरकी ही जैसी है।

जबसे इन्होंने होश सँभाला है, तभीसे वह इनके सामने आती रही है। इनकी आँखोके सामने यह नन्ही-सी बच्चीसे अब चौदह बरसकी

हो गई है। दिन थे, कभी इसे गोदी खिलाया था, बड़े चावसे थपका कर उसे सुलाते थे। फिर दिन आये, वह खेलने खिलाने और चिढाने-मनानेके लायक हो गई। तब उसके साथ यह कौतुक भी सब किया।

इसी बीच एक दुर्घटना घट गई। उससे इनके इस खेलने-खिलानेके रससे भरे संयुक्त जीवनका अन्त ही हो गया होता। पर कहिए विधिका विधान ही उलटा पडा, या कहें कि अनुकूल पडा! क्योंकि चौथे वर्षमे उसका विवाह हो गया और पॉच वर्षकी होते न होते वह विधवा हो गई।

जब विधवा हो गई तब यह तो कैसे होता कि आठवी क्लासमें पढ़नेवाले छात्रको पता न चलता। पता तो चला पर यह 'विधवा' विशेषण उन दोनोंके बीचमे आकर खड़ा न हो सका। भला उस एक जरा-सी घटनासे उन दोनोंको क्या मतलब जो एक दिन गाजे-बाजेसे लड्डू-पूरियोकी ज्यौनारके साथ संपन्न कर दी गई थी? और न इन्हें एक दूर-दराजके श्रीमन्त वृद्धके मर जानेसे ही कोई खास सम्बन्ध जान पडा। इसलिए इन दोनोंकी दुनिया तो ज्योंकी त्यों बनी रही। उलटे इस 'विधवा' शब्दके विशेषणने दोनोंको और निकट ला दिया।

सरकारी स्कूलके दशम श्रेणीके यह छात्र-महाशय जब पार न पाते, तो लड़कीसे कहते—ओ हो, विधवाजी!....

इसपर सात बरसकी उस लड़कीका चेहरा एकदम फुट-भर लम्बा और मन-भर भारी हो जाता।

इस कौतुकके लिए 'विधवाजी' का शब्दार्थ समझनेकी क्या आवश्यकता थी? क्या यह काफ़ी नहीं था कि वह उसे चिढानेके लिए कहा जा रहा है? और कभी कभी रूठना क्या स्त्रीत्वका तकाजा नहीं?

इस तरह उस विधवा-शब्दने उन्हे रूठने-रुठाने और मनने-मनानेके बहुतसे अवसर देकर उन्हे एक-दूसरेके और निकट ला दिया।

किन्तु कालिजसे अब वह दसवीं क्लासका लड़का बहुत होशियार बन आया है। वकील बन आया है, और वकीलके ऊपर फिलासफर बन गया है। अब वह भूलकर भी विधवा शब्द, मुँहमे तो क्या, दिमागमे भी नही आने देता।—किन्तु इससे क्या?

पर जैसे जीवनके पहले रोजसे हम हवाको अपने लिए आवश्यक और सहजप्राप्त रूपसे स्वीकार कर लेते हैं और उस ओर विशेष ध्यान नहीं देते, ऐसे ही वह भी लड़कीके बारेमे विशेष ध्यान नही देते थे। पर इससे क्या?

हर-साल कालिजकी गर्मीकी छुट्टियोंमे यह लडकीको पढाया करते थे। कोर्स खतम करनेके बादकी इन छुट्टियो और उन छुट्टियोंमें लडकी कोई अन्तर न देख सकी। वह पढ़ने आने लगी। पर यह छुट्टियाँ कब और कैसे खतम की जायेंगीं?

पढनेका काम आरम्भ तो कभीका हुआ, पर बढ़ अभी ज़रा ही पाया है। बात यह है, सालभर यह सिलसिला टूटा पड़ा रहता है, और फिर इन छुट्टियोंमे ही जुड़ता है। गाँवमें वह पढे भी और किससे, और अपने आप तो पढती रहे कैसे? पर इससे उत्साह तोड़नेका नाम न मास्टर साहब लेते हैं न लड़की।

क्या यह उत्साह प्रशंसनीय नहीं है?

२

आइए, पढ़ाना देखें।

लड़की तन-मनसे पढ़ रही है, पर मास्टरजी तन-मनसे नही पढ़ा रहे हैं। वह जाने क्या देखते हैं, और फिर क्या सोचते हैं।

लड़की अपनी सुलेखकी कापीमें बना बनाकर लिखनेमे लगी थी कि उसकी इंग्लिश रीडर इन्होंने उठा ली। जो पाठ आज पढना था उस सफेपर निगाह जमाते जमाते लिखना शुरू कर दिया। छपी लाइनोंके बीच बीचमे मोतीं-से अक्षरोमे लिखा—

"हमारी कट्टो पढती है। लोग कहते हैं, वह विधवा है। हम कहते हैं, वह कट्टो है और दुनियाभरसे अच्छी है।

"एक रोज हम चले जायँगे। वह रह जायगी। फिर वह भी चली जायगी। दुनिया रह जायगी। वाह!—यह तो बडी बुरी बात होगी।"

आखिर कट्टोका लिखना खतम हुआ और अब पढनेका समय आया।

किताब तो गुरुजीने दुबका ली थी,—उन्होंने कुसूर किया था। किताब भी कुछ ऊट-पटाँग लिखनेकी चीज़ है? कट्टोने अपने चारों तरफ किताब देख ली पर न मिली।

गुरुजीने पूछा—क्या है?

उत्तर मिला—हमारी रीडर!

"क्या हमने ले ली?"

"कहाँ गई?"

"देखो।"

कट्टोने फिर देखना शुरू किया। हार हूर कर आ खडी हुई—

"देख तो ली।"

"कोई फरिश्ते थोड़े ही ले जायेंगे।—फिर देखो।" गुरुजीने कहा और किताब कोटकी तहमे सरका ली।

काफ़ी ढूँढ़-ढाँढके बाद कट्टोने कहा—

"कोई सुई है!—कितनी तो देख ली!"

"अच्छा, हम साथ-साथ चलते हैं,—अब देखो।"

बहुत कुछ देखा तो उसी कमरेके एक कोनेमें औंधी पड़ी हुई वह किताब मिल गई।

"कहीं तो पटक देती हो,—फिर कहती हो कहाँ चली गई?"

"मैने तो सँभालके रक्खी थी।"

"बड़ी अच्छी रक्खी थी।"

"....अच्छा, अब सबक शुरू करो।"

सबक शुरू हुआ। वहीं पन्ना खुला,—

"हैं! ये क्या कर दिया?"

"देखे!" मास्टर साहबने किताब लेकर बड़े गौरसे देखी। कहा, "कोई बडा पागल आदमी है!....यह तुम्हारा ही खेल तो नहीं है!..."

"मै सच कहती हूँ—मैने नहीं किया।"

"सच तो बहुत कहती हो!...फिर कौन कर गया?"

"तुमने करा होगा।"

"मैने?—हरे, राम राम!"

किंतु इस तीव्र विस्मय-बोधकसे लड़कीका संदेह और पुष्ट ही हुआ। पूछा—

"नही तो किन्ने?"

"मैंने?....देखो, मै तुम्हारे सामने ही तो बैठा रहा हूँ।"

"हाँ हाँ! चुपचाप किताब उठा ली होगी।"

"हरे हरे! मै कोई बेवकूफ़ हूँ!"

"हम नही जानते। हम तो नहीं पढते। हमे दूसरी किताब लाके दो।"

"कौन लाके दे?"

" तुम।"

" क्यों ?"

" हम नहीं जानते।"

" तो हम भी नहीं जानते।"

" हम तो नहीं.. ...।"

" तो हम भी नहीं ..।"

" नहीं लाके देनेके ?"

" नहीं लाके देनेके।"

" तो हम नही पढते।"

" मत पढो।"

इसपर १४ बरसकी विधवा कट्टो बिना जरा देर लगाये उस किताबको उठाकर सब बस्ता वहीका वही छोड़कर चलती बनी।

" ओ पगली ! कट्टो !... सुन तो !"

उसने सुना लेकिन वह बढ़ती ही रही। आँखोंसे ओझल न हो गई, तब तक बढती गई। फिर दूसरे कमरेमे आकर खड़ी हो गई।

" अरी ओ पागल कहींकी !—"

कट्टो चुप।

मास्टरजीको पूर्ण विश्वास था कि कट्टो जायगी नहीं, आ जायगी, इसीसे दो-तीन-चार आवाजे दीं। कट्टो सबको पी गई और दुबकी दुबकी चुप खड़ी रही।

इसपर मास्टर-साहब धड़धड़ाते हुए आये और सीधे बडे दर्वाज़ेपर पहुँचे। बाहर सड़कपर देखा,—कट्टो न थी। वह वहीं खड़े रह गये,—कुछ सोचते रह गये। दो तीन मिनट बाद कहा,—'वाह!' और लौट आये।

इधर कट्टो मास्टर-साहबके बाहर होते ही अपने क्लास-रूममें दाखिल हो गई थी और आते ही भली विद्यार्थिनीकी भाँति सबकके मुश्किल शब्द किताबोमेसे कापीमें नकल करने लगी थी।

मास्टरजी आये। आते ही कहा—कौन?—कट्टो!

उसने कापीमेंसे मुँह नहीं उठाया।

"बड़ी शैतान हो तुम!"

कट्टोको जैसे कापीके शब्द लिखनेके सिवा दुनियामे किसीसे मतलब ही नहीं।

"और ऐसी छिप कहाँ गई थी?"

"कट्टोने ऊपरको देखा। जैसे उसकी आँखोंमे चुनौती भरी थी,—कोई हमें हरा सकता है? उसने कहा—

"तो नहीं दोगे लाके नई किताब?"

"क्यों नहीं लाके दूँगा!"

इसपर वह सब कुछ भूल-भालकर, मास्टर-साहबके मुँहके सामने एक बार मुँह बिचकाकर, खिलखिलाकर हँसने लगी।

मास्टरजीने कहा—तो यह किताब तो मुझे दे दो।

लड़कीने पूछा—तो इसमे ये, तुम्हींने लिखा था न?

मास्टर पकड़े गये, बोले—हाँ।

लड़कीने कहा—तो हम नहीं देते यह तुम्हें।

"तुम इसका क्या करोगी?"

"कुछ भी करें!"

"आखिर क्या?"

"फाड़ दूँगी!"

"अरे, नहीं नहीं!"

किताबको दोनों हाथोंमें पकड़कर लड़कीने कहा—

“ देखो, यह फाड़ी, यह !....फाड़ूँ ? ”

“ नहीं नहीं नहीं !....”

“ फाड़ती हूँ ! ”

“ नहीं, देखो, नहीं ! ”

लड़कीने देखा, मास्टर साहबसे यह नही होता कि उससे किताब छीन ले। यही तो वह चाहती है। उसने कहा—मैं तो फाड़ती हूँ।

मास्टरजीने देखा, लड़कीके हाथ जैसे सचमुच किताबके साथ जोर कर रहे हैं। वह उसकी तरफ झपटे। लड़की चौकन्नी थी—पलक मारतेमे फुदककर दूर जा खड़ी हुई।

“ वाह ! ऐसे झपटे, फिर भी कुछ नहीं ! ...देखो, यह फटी यह ! ”

मास्टरजीने कहा—तुम्हारे हाथ जोड़ूँ, फाड़ो मत !

लड़कीने कहा—अच्छा, जोड़ो हाथ।

मास्टर साहबने हाथ जोड़ दिये।

बालिकाने अपने दोनों हाथोंसे उन जुड़े हुए हाथोंको पकड़ लिया। किताब देते हुए कहा—‘ लो ’ फिर कहा—

“ अच्छा, अब सबक पढ़ाओ। ”

“ मास्टरजी चुपचाप सबक पढ़ाने लगे।

४

जब पढ़ाई ऐसी हो, तो जीमें खलबली मचे कैसे नहीं ? मास्टरजीके जीवनमे थोड़ा मिठास आने लगा।

समझते थे हम एक थिरतापर आ गये हैं। विचारों और धारणाओंको

पीट-पीटकर मजबूत करके, उनके ऊपर बैठकर, सोचने लगे थे कि अब डिगेंगे नहीं। जैसे जीवन भी सरल रेखाओंसे घिरा कोई पिण्ड है जिसे नाप-तोलकर निश्चित कर लिया जाय।

पर यह क्या हो गया! पल-भरमे यह कैसी गड़बड़ मच गई! अब तक तो कुछ न था। अपने उस चबूतरेपर बैठकर जीवनको और संसारको पढने और सुलझाते रहनेमे कोई मुश्किल नही जान पड़ी। पर जैसे अब सारा संसार, और वह, और वह उनका चबूतरा,—सब एक झूलेमें झूलने लग गया। एक लहर उठी और उनके सारे अस्तित्वको डुबाने-उतराने लगी। सब कुछ मिट-मिटाकर सावनके इन्द्रधनुषके रंगोमें लय हो गया—और उन रंग विरंगे रगोमे झाँक-झाँककर देखती हुई दीखने लगी वह कट्टो। यह किसकी माया थी?

ज़रा-सी ककरीने आकर सोये हुए विशाल जल-तलकी स्थिरता भग कर दी। हलकी-सी हवाका झोंका जैसे जब जल-तलको थपकता हुआ बहता है, तो उस सारे तलमे एक सिहरन-सी होती है, उसमे कँपकँपी उठ जाती हैं। वैसे ही किसी आवेगके मीठे झोकेने उनके सोये जीवनके तलपर एक सिहरन सी फैला दी। कटोरेको जैसे किसीने बाहरसे छू दिया, और उसके भीतरका पानी यहाँ वहाँ तक काँप गया।

जीवनकी गहराईमेसे जो लहर उठी हो, उसको मनुष्यके बनाये हुए धारणा-सकल्पोके रेतके किनारे कहाँतक कबतक रोक सके हैं?

५

थोड़ा कट्टोसे परिचय करें।

वह चार वर्षकी विधवा है। गरीब माँ-बापकी है। बाप है नहीं, माँ

ही माँ है। वह माँके ऊपर बोझ है, और माँ जब तनिक झींकती है तो स्वर्गमें जा बैठे उसके निर्मोही बापको याद करती हुई अमुक शब्दोंमें यह सत्य पड़ोसियोपर और अपनी उस लड़कीपर प्रकट कर देती है। फिर कुछ सगे भी हैं, पर वे हर वक्तके लिए नहीं।

उसका नाम? हमारे मास्टर-साहबने उसका नाम कट्टो रखा है। लडकी बुरा माने तो माने, हमारे लिए यही नाम यथेष्ट है। और यह नाम बिल्कुल निरर्थक नहीं है। मास्टरजीने रक्खा तो बहुत समझ बूझकर नही है, पर बहुत उपयुक्त है। कट्टो गिलहरीको कहते हैं। उसकी ठोड़ी गिलहरीके मुँह जैसी है, वैसी ही नोकदार। उसके चेहरेसे भी वही गिलहरीका भाव टपकता है। झटपट यहाँ दौड़, वहाँ दौड़, इधर देख, उधर देख,—ये सब भाव उसमे हैं। गिलहरी जब किसी गोल मटरको लेकर, पिछले पैरोंपर उचकी बैठकर, अगले दोनो हाथोंसे मुँहमें दस बार देकर खाती है और आपको ताकती रहती है तो कैसी सुन्दर लगती है! ऐसी ही वह है। और जसे कट्टो, जरा चुटकी बजाओ, तो चट दरख्तकी छतपर पहुँच जाती है, ऐसे ही मिनट भरमे यह कट्टो कहाँ भाग जायगी, कुछ पता नहीं।

पर, जगत्का वैषम्य देखो। एकके तो ये भाव दुनियाको खुश करते और प्यारे लगते हैं, दूसरीके लिए वे ही उसके पाप है। इस लड़कीकी इन बातोंको देखकर लोग बड़े कुढते और नाखुश होते हैं।

लोग कहते हैं,—वह विधवा है कमनसीब। लडकी जान गई है, वह विधवा है, कमनसीब भी होगी। लेकिन फिर हँसने-खेलने, भागने-कूद-नेका अधिकार वह क्यों नहीं रखती, यह वह नहीं समझ पाती।

बालिका सुन्दर नहीं है। उसके ओंठ जरा ज्यादे ताजे और ज्यादे

खुले हैं और जैसे फैलते फैलते यकायक रुक गये हैं। चेहरेके एक एक अगमें और भी दोष निकाले जा सकते हैं। पर वह इन सबसे निश्चिन्त है, और समझती है, वह असुन्दर नहीं है, रंग उतना उजला नहीं जितना साँवला है।

लेकिन आँखे? जाने उनमे क्या है! वह एक क्षण कहीं टिककर ठहरतीं नहीं। यहाँ-वहाँ तिरती रहती हैं, पर ठहरती हैं, तो जैसे उसके भीतर तक चली जाती हैं। उन आँखोंमे जाने कैसा औत्सुक्य और जाने क्या है कि लगता जैसे उसे सब हरियाली है, सब निमन्त्रण है, सब चेतावनी है। उन आँखोंमे एक चमक है और जब पलकें उनपर झुकती हैं तो यह चमक एक पतली-सी रेखामे आ इकट्ठी होती है और वहाँ जैसे आर्द्रता फैल जाती है।

वे आँखें उसकी बड़ी कुतूहलपूर्ण और बड़ी हिंसामय हैं। उसके कुतूहलमें जैसे हिंसा है, और हिंसामे सिवा कुतूहलके कुछ नहीं है। वे आँखें जैसे कहती हैं कि वे सब देखती हैं पर नहीं देखतीं। उनके लिए कुछ भी वर्ज्य नहीं है।

इन आँखोंसे ही कह सकते हो सुन्दर नहीं है और इनके कारण ही कहा जा सकता है कि अत्यन्त सुन्दर है जैसे मानों स्त्रीत्व छनकर इन आँखोंमें भर गया है।

६

मास्टर साहब सोचमें हैं। सोचते हैं,—यह जो एक नया मीठा-सा उद्वेलन उठा है और जो मुझे झुलाता-ललचाता है, मै उसे बहला बहला कर पोसना शुरू कर दूँ तो परिणाम अनिष्टकर हो सकता है।

तभी बस्ता लेकर कट्टो आ पहुँची।

" कट्टो, आज पढ़ना नहीं होगा । आजसे...."

कट्टोका झट-से एक हाथ मास्टर-साहबके माथेपर जा पहुँचा । यह हाथ थर्मामीटर है ।

" क्यों, कैसी तबीयत है ?"

यह मन क्यों खिसकने लगा ? यह बुरी बात है । बोले, तबीयत ठीक हैं । पर आजसे....

कट्टो मास्टरजीके ऊपर छोटी-मोटी डाक्टरनी बन बैठी है । हाथ रखते बतला दिया, तबियत सचमुच ठीक ही है । शारीरिक कोई शिकायत है नहीं । बाकी जो होगा सो वह खुद ही देख लेगी । बोली—

" आज वह फिशरमेनवाला सबक है । सी-शोअर मायने क्या, और—और बिलोज़...."

" सी-शोअर=किनारा । बिलोज़=लहर । पर कट्टो, मुझे काम है, मैं जा रहा हूँ ।"

" अच्छा जाना, मायने लिखा जाओ ।"

" नहीं...."

" नहीं कैसी ?"

" ऐसे जोर-जब्रका उल्लंघन कैसे हो ? पढ़नेवाला जब पढ़के ही छोड़ेगा तो पढ़ानेवाला क्या करे ? फिर भी बोले—

" ऐसी कोई तुम्हारी जबर्दस्ती है ?"

" जबर्दस्ती नहीं तो यों ही—!"

कह तो गई, पर ऐसी बड़ी बात कहकर ख्याल उसे जरूर हुआ । भला पूछो इसकी जबर्दस्ती कैसी ? उसने भी सोचा, " भला सो मेरी जबर्दस्ती कैसी ?"

उसने अपनी उन उन्हीं भेदीली आँखोंसे ऊपर देखा। उन आँखोंमें कातर भावसे लिखा था : मानों तब तक ही जबर्दस्ती है, नहीं तो मै कौन हूँ ?

मास्टरजीने देखा, कैसी ये आँखें हैं! सोचा उन्हींको पारकर तो वह ऐसी बड़ी बात कह रही है। उसकी बात उन्हींपर आ पड़ी है। नहीं मानें तो—उन्हींके हाथ है। वही जज हैं, अभियोगकी फरियाद और कहीं नहीं जायेगी, उन्हींके पास आयेगी।—फिर वह अभियोगमे हाथ कैसे डाले ? बालाने अपनी बात कहकर उसकी रक्षाका सारा भार उनके ऊपर डाल दिया। अब वह बड़े असमजसमे पड़ गये। इस सिलसिलेको तोडना तो है ही, पर क्या इस तरह उनके आसरे जो जरा-सी बात कह डाली गई है, उसकी रक्षासे विमुख होकर ?— नहीं। उन्होने कहा—अच्छा, आज पढ़ लो, कलसे ..

बात जब झटपट मान ली गई, तो कट्टो समझ गई, यह कोरा मान-मनौवलका तमाशा नही हैं। वह मास्टर साहबको खूब जानती है। मास्टरजीको देखकर और बातके ढगको देखकर उसे रंचमात्र संशय नहीं रहा कि कल पढाई नहीं होगी। आजका दिन उसकी पढ़ाईका, उसकी जबर्दस्तीका और उसके राज्यका अन्तिम दिन है। उसका उत्साह बुझ गया। बड़े कड़वेपनके साथ बोली—

"ओह मै क्या कह गई! मै कौन हूँ जो मेरी जबर्दस्ती हो!" इस अप्रिय बातको संक्षिप्त करनेके लिए मास्टरजीने कहा—

"अच्छा, पढ़ो पढ़ो।"

पढ़ाई हुई। पर बिल्कुल सूखी। वृन्तच्युत फलकी तरह उसका मन टूटकर धूलमे लोट रहा है। मशीनकी तरह किताबमें आँख गाड़े वह पढ़ रही है, पर क्या खाक धूल पढ़ रही है, सो कौन जाने।

मास्टरजीका मन भी जैसे मिचला रहा है। जैसे रो उठनेकी तयारीमे हो।

" कट्टो, अब जाना भी तो होगा।"

" जाना होगा? क्यो, कहाँ?—छुट्टियाँ खतम हो गई ?"

छुट्टियाँ खतम नहीं हो गईं, खतम की जा रही हैं। और इस तरहसे कि वह अब लौटे ही नहीं। पर कट्टोसे यह समझाकर कैसे कहा जाय?

" हाँ, छुट्टियाँ भी खतम होगी हो।"

" पर अबके बडी जल्दी—!"

" हाँ।"

यह दबा-सा ' हाँ ' सुनकर कट्टोने कहा—

" यह क्या बात है? छुट्टियाँ खतम हो गई है तो जाओ। ऐसे क्यो होते हो?"

सत्यधनने सँभलनेका यत्न करके कहा—

" कहाँ!—कैसा भी तो नहीं हो रहा!"

" तो कब जाओगे?—कल?"

कल ही चल देना पडेगा, सो तो न सोचा था। पर अब देखा, नहीं भी कैसे करें। बोले—हाँ।

" किस वक्त? सबेरे या शामको?"

" तीसरे पहर।"

" अच्छा, मै जब तक न आऊँ तब तक मत जाना। कहो, नहीं।"

" नहीं।"

कट्टो फिर चली गई और मास्टर-साहब पड़ गये। कट्टोका ध्यान आने लगा। सोचते सोचते, प्रेम तो क्या कहें, पर कट्टोपर रह रह कर

करुणा उठ आती थी। वह कैसे अपने वर्तमानमें मग्न है जब कि भविष्य शून्य, निर्जन और अँधेरा है। जब इस भविष्यमें कट्टो पहुँचेगी, तो उसका क्या हाल होगा! पर, देखो, कैसी लड़की है! इसकी चिन्ता भी उसे छू नहीं गई। क्या कुछ हो सकता है कि यह भविष्य उलट जाय? क्या वह जीवनके अंतिम दिन तक इसी तरह उनसे पढने आती नहीं रह सकती? उसकी खातिर वह खुद इसी तरहके बिन ब्याहे मास्टर बने रह सकें तो कैसा? लेकिन ..कल तो जाना है!

क्यों जाना है? नहीं जाना। नहीं जाते। होने दो जो हो, भागकर क्यों जायँ?

तभी डाकिया डाक दे गया। बिहारीकी भी चिट्ठी आई। वह फेल हो गया। उसके बाबूजी परिवारके साथ काश्मीर जा रहे हैं। बहुत जोर दे रहे हैं—तुम चलो। चलना पड़ेगा। टाल नहीं सकोगे। टालोगे तो कसम। गरिमाका भारी अनुरोध है। क्या उसकी भी रक्षा नहीं करोगे? अमुक दिन जा रहे हैं, उससे पहले ही मिल जाओ।

यह चिट्ठी इसी वक्त क्यों आकर पहुँची? क्या भाग्यके इशारेपर? ऐसा है तो यही सही।....लो, कट्टो, मैं सचमुच चलता हूँ।

बिहारीको चिट्ठी लिख दी गई। अगले दिन सबेरा हुआ, दो पहर भी टल गई। चल देनेका वक्त अब हुआ ही चाहता है,—पर कट्टो नहीं आई! भीतर ही भीतर उत्कण्ठासे प्रतीक्षा कर रहे थे,—न आई तो जी मसोसने लगा। लेकिन सोचा, मुझसे तो पक्की वही है, फिर मैं ही क्यों कच्चा बना रहूँ! हठात् सूझा—आये न आये, वक्तसे थोड़ा पहले ही चल दो।

इधर कट्टोको बहुत-सा काम करना था। पहले तो बहुत-सा रोना था, क्योंकि भीतरसे जीको ऐंठता हुआ जो क्षोभ उठा है, उसे बहाये

बिना वह और कुछ भी नहीं कर सकती। फिर एक तकिया बनाना था। अबके एक तकिया बनाकर मास्टर साहबको देगी। काम छोटा-मोटा है नहीं, फिर बड़े यत्नसे किया जा रहा है। दोपहर बीत रही है तो क्या, यह भी अब खतम हुआ। मेरे बगैर वह जा तो सकते नहीं, वह निश्चिन्त है और एक मोनोग्रामपर झट झट सुई फेर रही है। उस मोनोग्रामका भी इतिहास है। पर उस इतिहासको सुनायगी तो देर हो जायगी। और मास्टर साहब कहीं चले न जायँ!

काम खतम हुआ। तकिएकी तह करके, एक कागज़में लपेटकर कट्टो उछलते मनसे चली। घर पहुँची, पर मास्टर साहब कहाँ?

यह क्या हो गया? उसकी जबरदस्तीके दिन क्या बीत गये?—जरा-सी बात भी अब उसकी नहीं रखी गई? अभी तो आ रही थी, ठहर जाते तो क्या होता? वह रोई नहीं, सुन्न हो गई।

इधर मास्टर साहबकी साहित्यिकताने बीचमें दखल दे डाला था। होना है वह तो होना ही है, पर कडुआपन क्यों रहे? हँसी खुशी सब क्यों न हो जाय? सोचा—ताँगेपर बिस्तर पहुँचा आयें, आप घरसे जरा दूर दुबके खड़े रहे और जब कट्टो सोचमें मर रही हो, तब परमात्माकी विभूतिकी तरह आविर्भूत हो जायें।

कट्टो लकड़ीके ठूँठकी नाईं काठ-मारी खड़ी थी। यह कैसी आवाज आई—'कट्टो! और उसके साथ हँसीका ठहाका!'

विद्युत्की तरह क्षण-भरमे जीवनकी चुहलकी लहर उसके सारे शरीरमें फैल गई।

रोमांच हो आया, शरीर उछलने लगा।

"तुम बड़े दुष्ट हो!"

"यह कागज़मे क्या है?"

" नहीं दिखाती, नहीं देती।"

" मै भी देखूँ कैसे नहीं दिखातीं, कैसे नहीं देतीं ?"

" मुझसे लड़ोगे ? बड़े अर्जुन हो !—लो।" देकर वह तो घरके भीतर भाग गई।

खोल खालकर देखा। ओहो, बड़ी कारीगरीका काम है! औ यह।—यह मोनोग्राम तो कहीं मैने ही बनाया था। अब यह रेशमके धागोंसे गूँथ-गाँथ कर मुझे ही दिया जा रहा है! इस भयंकर चीज़को अपने साथ कैसे रखूँ? इस गूँथनेके साथ न जाने और क्या गूँथ दिया गया है,—सो उसका अधिकारी मै कैसे बन जाऊँ?

भीतर कमरेमे कट्टोको ढूँढ़ पाया।

" लो अपनी कारीगरी लो। मैने कुछ उचाट नहीं लिया।"

" मै नहीं लेती।"

" मैं क्या करूँगा ?"

" क्या करोगे ? क्यों, पास रक्खोगे, अच्छी तरह रक्खोगे। नहीं रख सको तो फेंक देना। यह फेर देनेके लिए नहीं है।"

कॉमेडी तो गड़बड़ हुई जा रही है। यह बिदा ट्रैजिक हो गई तो सदा कसकेगी। कहा—

" यही सही, साहब। रक्खेंगे। बस ?"

लेकिन इन बातोंमें स्त्रीकी आँखोंको धोखा देना सहज नहीं है।

" रक्खो तो, नहीं रक्खो तो—"

" फिर वही! रक्खेगे, रक्खेगे। .. लेकिन अब चला।"

" जाओ!"

इस "जाओ" मे यह व्यथित आह-सी क्या बजी? यह फिर गड़बड़। कहनेके लिए कहा—

" सबक पक्का करती रहना। आऊँगा, तो इम्तहान लूँगा। भला ? "

" अच्छा। "

" अच्छा तो कट्टो, चलूँ ही। " कहते हुए उसका एक हाथ अपने हाथोंमे ले लिया और कहा—

" कैसी अच्छी कट्टो हो ! खूब सबक याद करोगी। और मुझे भी याद करोगी—है न ? "

ज्यादह देर लगाना ठीक नहीं। मन धँसता जा रहा है। जेबसे सुनहरी जिल्दकी एक छोटी-सी किताब निकालते हुए कहा—

" लो अपने तकियेका इनाम। "

उन्होंने चुप चुप दिया और लड़कीने चुप चुप ले लिया।

वह चल दिये, वह खड़ी रही।

घर आई। किवाड़ बन्द कर किताब खोली। भीतर वही मोनोग्राम बना है। यह कैसा सुन्दर है, मेरा कैसा भद्दा था !

ओ मास्टर, तुम कहाँ गये ?

७

मास्टर साहब काश्मीरकी राहमे हैं। बिहारी साथ है, बिहारीकी माँ और बाबूजी, छोटा भाई छह बरसका विपिन, और गरिमा। गरिमा नाम भी हमारे मास्टर साहबका ही रक्खा हुआ है। जैसे उस अपने गाँवकी गँवई लड़कीको देखकर इन्हें 'कट्टो' सूझा वैसे इसे देखकर पहले ही पहले गरिमा सूझा था। 'गरिमा' इनके मुँहसे निकला कि इनके और बिहारीके बीच लड़कीका वही नाम पड़ गया। फिर तो घर-भरके लिए नाम ही वह हो गया।

कालिजके दूसरे सालसे ही बिहारी सहपाठी है। बिहारीको यह

इतने भाये कि बिना देखे ही घर-भर इनको जान गया। शुरू बार ही जब घरमें घुसकर बाबूजीको प्रणाम किया तभी इन्होंने अनुभव किया कि वह पहलेसे ही उनके आत्मीय बन गये हैं, दूसरे नहीं हैं। माँके मुँहसे जब निकला 'बेटा' ही संबोधन निकला। विपिन तब नन्हाँ था और गरिमा खिलनेपर आ रही थी।

बाबूजी वकील हैं। हैसियतके दुनियादार आदमी हैं। सत्यधनको जानकर गरिमाकी चिन्ता करना उन्होंने छोड़ दिया। घरमें एक बार कहा—

"देखती हो? अब लड़कीको खूब पढ़ानेका काम ही रह गया है। आगेकी चिन्ता परमात्माने हमारे ऊपरसे उठा ली है।"

पर सत्यधनके क्या शेक्सपियरसे कम आँखे हैं? जूलियटसे कमका स्वप्न किसी तरह नहीं देख सकते। उनका मन किसी तरह नहीं मानता कि शकुन्तला होना अब बन्द हो गई हैं। होती हैं, पर भाग्य चाहिए। और वह अपने भाग्यको हेय माननेको तैयार नहीं है।

गरिमा बड़ी अच्छी लड़की है। पढ़नेमें तेज है, बात करनेमें चतुर, देखनेमें लुभावनी है। और जब खिलेगी तो बात ही क्या!—लेकिन—लेकिन—ऊँह!

बी० ए० करनेके बाद बाबूजीने बड़े चक्करसे इस बातको बाँधना शुरू किया।

"सत्य अब क्या करोगे?"

"अभी तो वकालत ही पढ़ना है।"

"ठीक....तुम्हारी माँकी तो उमर अब काफी हो गई होगी।"

"हाँ—जी।"

"तुम्हें अब उनकी चिन्ता करनी चाहिए।"

सत्यने कुछ 'हॉ-हूँ' कर दिया। बाबूजीने कहा--

"गिरीका पढ़ना तुमने देखा?"

"सुनते हैं, खूब तेज है।"

"हाँ, अच्छी है। म्यूज़िकमें इनाम पाया है। अब नौवींमें है।"

सत्यने यहाँ भाग छूटना चाहा।

"हो न हो, कभी कभी उसे कुछ बता दिया करो। बिहारी तो बड़ा नट खट है। वह तो कुछ करता धरता नहीं।"

"अच्छा।"

सत्यने सोचा, जितनी देर लगती है, उतनी ही मेरी मुश्किल बढ़ती है। उसने मामला साफ़ कर देनेके लिए कहा—

"माँ ब्याहके लिए जोर दे रही हैं। मैं कह चुका हूँ, वकालतसे पहले ब्याह करना पैरोंमें कुल्हाड़ी मारना है। ये आखिरी साल हैं, इनमें पूरी मेहनत लगानी चाहिए।"

"सो तो ठीक" वकील-साहबने कहा, "पर माँका कहना भी गलत नहीं है। उन्हें भी तो सेवाके लिए कोई चाहिए न?"

"पर वकालतसे पहले तो मै कुछ कर नहीं सकता।"

"सो तुम्हारी मर्ज़ी।"

जालको इस तरह काटकर थोड़ी देरमे वह विदा ले गया।

वकील साहब कभी युवा रहे हैं, और दुनिया देखी है। समझ गये, अभी लड़का स्वप्न देख रहा है। शेक्सपीयरकी पढ़ाई अभी बहुत ताज़ी है। ज़रा पढ़ाई ठण्डी होने दो, स्वप्न-जगत्की जगह यह ठोस जगत् आने दो, तब वह अपने आप राहपर आ जायगा। जल्दीकी ज़रूरत क्या है?

तबकी निबटी निबटी बात बाबूजी अब उठाना चाहते हैं। इसीलिए

काश्मीर-प्रवासमे उसे इस तरह आग्रहपूर्वक बुलाया गया। जब वह झट आ गया, तो बाबूजीने देखा, लक्षण बुरे नही हैं। उन्हें क्या मालूम बीचमे और कुछ घट चुका है।

गरिमा इंट्रैन्स भी पार कर चुकी है, और किशोर-वय भी। अब यौवन-वसन्तकी देहलीपर खडी उस वसन्तोद्यानकी झाँकी ले रही है। अभी देख रही है। वसन्तकी वायु झोंके ले ले कर आती और उसके शरीरपर अपना नशा फेक जाती है। थोडी देरमे दहलीजसे उतर कर वह आगे बढ चलेगी, बह चलेगी। अभी तो वही चुप-चाप खडी सब कुछ देख रही है। चलनेसे पहले वह अपनेको चाहसे भरपूर भर लेगी, जिससे यह चाह उसे यौवनके कालमे उड़ाये ले चले, उड़ाये ले चले।

रेल उन्हें पहाड़की हरियाली उपत्यकाओंसे ले जा रही है। बिहारी और सत्य जागते हैं,—बाकी सो रहे हैं। गरिमा सब कुछ अपनी पलकोंमे मीचे, पासवाली बेंचपर निश्चेष्ट सो रही है। साँस बँधे विरामसे आ जा रहा है। परिधान,—बस कही कहीसे तनिक ही अस्त व्यस्त हुआ है। ऐसी सुख-स्पर्श वायुमें नींद कैसी प्यारी लगती है! और उस प्यारी नींदकी जागते हुए चौकसी करना भी कैसा मीठा लगता है!

सत्यने सोचा, एक यह है जिसका भविष्य कैसा निश्चित-सुखी है, जिसने जीवनमे आराम ही पाया और विलास ही देखा है। एक वह है, कट्टो, जिसे केवल 'न'कारकी मूर्ति बने रह जीवन काट जाना है। यह कैसा वैषम्य है! फिर सोचा, अब मै क्या करूँगा? क्या मै इस वैषम्यको बढाऊँगा? या—या साम्य बढाऊँगा?

अब इस प्रकारके तर्कसे, और पहले ठीक उलटे कारणसे सत्यने देखा, उसका और गरिमाका योग न हो सकेगा।

फिर वह कट्टोके बारेमे सोचने लगा। सोचा, क्या दुनियाके प्रति हम निश्चिन्तोंका कोई कर्तव्य नहीं है? क्या संसारका सारा सुख हथिया लेना अन्याय नही है उनके प्रति जिन्हें उसका कण भी नहीं मिल पाया है? और कुछ नहीं तो उनके खातिर क्या हम अपना सुख कम नही कर सकते?...कट्टोको इसी तरह रहने देकर मै खुद कैसे विलास-गर्तमे डूब सकता हूँ?

तभी उसे एक समाधान दीखा। वह प्रसन्न हुआ। अवश्य यही होना चाहिए। कट्टोको विधवा कहना 'विधवा' शब्दकी विडम्बना है। विधवा हो तो भी क्या? उसका अवश्य विवाह होगा।

इस समाधानसे उसे चैन मिला। उसका विवाह हो चुकेगा, तभी मै विवाह करूँगा, पहले नहीं।

८

काश्मीर आ गये। वहाँ उसने बिहारीको पकड़ा। बिहारी बडा निर्द्वन्द आदमी है। बचपनसे ही उसे आराम और पैसा मिला है, इससे इन दोनों चीजोंसे उसका मन जैसे भरा हुआ है। वह इनकी जरा भी पर्वाह नहीं करता। वह जिन्दगीमे रोमांस चाहता है। जोखिमको वह प्यार करता है, और ढूँढता है कि जोखिमके काम उसे मिले। उसके बाबूजी उसके इस स्वभावसे अप्रसन्न नहीं हैं। सीधी-भोली-चिकनी दुनियादारी, जहाँ गड्ढोंसे बच-बचकर सिर्फ़ पक्की बनी-बनाई सडकपर ही चलकर संतोष मान लेना पडता है, कोई बहुत श्रेयकी चीज नहीं है,—यह बाबूजीने अपने सफल जीवनसे समझ लिया है। उन्होने प्रतिष्ठा भी बनाई, रुपया भी पैदा किया,—पर कुछ नहीं। जीवनमे कभी बड़ा मजा नहीं पाया। इससे वह बिहारीको खूब रुपया उड़ाने देते हैं और खूब मनमानी करने देते हैं।

इसीलिए बिहारीका ब्याह नहीं हुआ। पिता इसके सम्बन्धमें चिन्ता नहीं करना चाहते। आदमीकी तरह दुनियामे बढकर वही खुद अपनी जीवन-संगिनी ढूँढ़ ले। उनका विश्वास है, बिहारी जैसे-तैसे एक ढंगके साथ दुनियामे अपनी राह तै कर जायगा,—उसके बारेमे ज्यादा परेशान होनेसे काम न चलेगा। उसको कोई बहू ला दी जायगी तो उससे उसकी कभी न निभेगी, और खीझखीझ कर वह अपनी जिन्दगीको लुंज कर लेगा।

लेकिन गरिमाके बारेमे वह बड़ी सतर्कता और सोच विचारके साथ आगे बढ़ते थे। इस तरह उसकी ओरसे लापर्वाह वह अपनेको कभी न बना सके। समझते थे, व्यक्तित्व अलग अलग तरहके होते हैं। उनकी पूर्णता भी अलग राहसे ही मिलती है।

इसी बिहारीपर सत्यने अपनी आस बाँधी थी। बिहारी कुछ करना चाहे,—अगर वह बुरा न हुआ, फिर चाहे कितनी ही जोखिमका हो,—तो बाबूजी उसमें कभी रुकावट नहीं डालेगे, यह सत्य जानता था। उसने बिहारीके मनमें सावधानीसे कट्टोके लिए गुदगुदी पैदा की। बिहारी बड़ी जल्दी खिंच जानेको तैयार रहता है। बुराई उसमें नहीं होनी चाहिए, फिर तो बिहारीसे जो चाहे करा लो। डूबतेको बचानेके लिए वह किसी झिझकमे पड़कर देर नहीं करेगा,—फौरन कूद पडेगा। दस कदम दूर कूदनेके लिए सुगम किनारा होगा, तो भी वहाँ जानेको ठहरेगा नहीं। और जितना ही काम मुश्किल होता है, उतना ही तत्परता और आनन्दसे वह उसमें कूद पड़ना चाहता है।

कट्टोकी बात सुनकर उसका मन उछला। सत्यने इस ढंगसे बात रक्खी थी कि जैसे एक लड़कीके उद्धारका सवाल है। परिणाम जो

होगा सो हो, बिहारी तैयार है। बिहारीने यह कह दिया। पर साथ ही पूछा—

"तुम्हीं क्यों नहीं बढ़ते?"

सत्य अकचकाया।

"मै? .. ...न-अ। मै कैसे कर सकता हूँ? तुम जानते हो, हो सकता है मेरे संबंधमे यह शुद्ध परमार्थका काम न हो।"

बिहारी इस उत्तरसे प्रसन्न हुआ। वह जानता था सत्य अब तक भी बहिन गरिमाके सम्बन्धमे पूर्ण अनुकूल नहीं हुआ है। इस कारण सत्यकी बातपर उसे विश्वास हुआ, और उसके लिए सत्यको उसने धन्यवाद दिया।

९

सत्यके सिरसे बोझ टला। उसे विश्वास था कि कट्टोको मनाना कठिन न होगा और जब यह बात हो जायगी, तो उसे अपने सुखसे नाराज रहनेका मौका न रहेगा। वह भी फिर गरिमासे विवाह कर लेगा। और फिर ...लेकिन तब तक?—तब तक नहीं।

आखिर एक दिन बाबूजीने बात छेड़ी ही।

"सत्य, एक बात कहनी है। अब तुम्हें विवाहके लिए तैयार हो जाना चाहिए।"

बिना भूमिकाके बात इस तरह दो-टूक सामने डाल दी गई, तो वह अकचकाया। कहा—

"पिताजी, मैं वकालत नहीं कर रहा हूँ।"

'पिताजी' सम्बोधन जीवनमे बहुत कम बार उनके कानोंमे पड़ा है। सब 'बाबूजी' ही कहते हैं। इसलिए, वह बड़ा प्यारा लगा।

सत्य न जाने किस झोंकमें यह कह गया था। पिता बोले, "जानता हूँ।"

सत्यको अचरज हुआ, "आप जानते हैं?—कैसे?"

"होशियार-बहादुरकी बात मेरे कानों तक पहुँची है।"

"फिर भी आप कहते हैं?"

"हाँ, कहता तो हूँ। क्या वकालतकी वजहसे मै गिरीको देना चाहता हूँ? समझ लो, वकालतको नहीं, दूँगा तो मै तुम्हे गिरीको दूँगा। यह भी तो हो सकता है कि वकालत चले ही नहीं?"

बाबूजीके इस विश्वासपर सत्यका हृदय गद्गद हो गया। उसने भी अपना दिल खोल देना चाहा—

"एक बात है, पिताजी। गाँवमे एक लड़की है। मेरे साथ साथ बढी है। उसका कुछ ठीक हो जाय तो मै शादी करूँ। मै तो इधर यों विलासमे पड़ जाऊँ, और वह मेरे घरके पास झुरती झुरती रहे,—न, यह मुझसे न होगा।"

बाबूजी ऐसी बातोंको पसन्द तो करते हैं, पर सनक समझते हैं। दुनियामें ऐसी साधुता कहाँ कहाँ करोगे? जगह जगह उसकी जरूरत है। और जहाँ पता चला नहीं कि तुम्हारी साधुतापर दावा करनेवाले ढेरों लोग इकट्ठे हो जायेंगे। इससे अच्छा है, ऐसी मीठी मीठी साधुताओंकी बहकमे आओ ही नहीं। यह बाबूजीकी राय है। पर कोई अच्छी-सी बेवकूफी करना ही चाहता है तो करे। बोले—

"तो उसके बारेमें क्या करोगे?"

"कहीं उसका ब्याह हो-हुआ जाय तो ठीक है।"

"अच्छा।"

और अच्छा कहकर बाबूजी चुप हो गए। समझ गए, इस परामर्शके

कामके लिए बिहारीको ही पकाया जा रहा दीखता है। बिहारीको इसमे सन्तोष मिलता है तो इसमें भी कुछ हर्ज नहीं है। पर जान पड़ता है, मुझे थोड़ी देर और भुगतना है। लड़केका थोड़ा-सा पागलपन और ठण्डा होना बाकी है।

इसमे उन्हे शका न थी कि लड़का घूमघामकर आ गया वहीं, जहाँ वह समझते हैं। आँधी आती है, बड़ी जोरकी आँधी। मालूम होता है, सारी दुनिया उड़ जायगी। लेकिन कुछ रेत और फूसके सिवाय कुछ नहीं उड़ता। आँधी आकर चली जाती हैं, और दुनिया अपने काममें लग जाती है। इसी तरह यह बिना पचे विचारोंका तूफान आया है। आकर चला जायगा, और सत्य ढँगसे लग जायगा।

१०

काश्मीर स्वर्ग है और काश्मीरका शालीमार स्वर्गोद्यान। उसी स्वर्गोद्यानमे बड़ेसे चिनारके पेड़के नीचे सब बैठे हैं। बाहर झीलमें उनका बजरा ठहरा है।

जहाँ बैठे हैं, मलमल-सी दूबका कालीन दूरतक फैला हुआ है। सामने ही नहर है। किलोल खाती बह रही है, मछलियाँ उसमे खेल रही हैं। वह नहर बहती बहती फिर संगमरमरके प्रपातपर जा उतरती है, धीरे धीरे बल खाती, इठलाती और खेलती हुई। मानो शाहशाह शाहजहाँकी सौन्दर्य-कल्पनाधारा जलमय होकर, लहरियोंका शुभ्र-नील हलका वसन पहनकर, हमे अपनी अठखेलियाँ दिखला रही हो।

स्वर्गकी इस मनोरमताको गरिमा देख रही थी और आँखोंकी राह खींच कर अपने हृदयपर चित्रित करती जाती थी। उसको ऐसा मनोरम चित्रपट कहाँ मिला होगा!

पानी उधर खेल रहा है, विपिन इधर इतनी दूर कैसे चैनसे बैठा रह सके !

" दादा, हम सैर करेंगे । " उसने सत्यसे कहा । वह सब बात सत्यसे ही कहता है, क्योंकि सत्य उसकी बात टालता नहीं ।

उँगली पकड़कर सत्य उसे सैर कराने लगा । सब दिखलाया । जब लौटा तो विपिनकी दोनों जेबे और हाथ पत्थरों, फूलों और पत्तोसे भरे थे ।

यह भरा खजाना दिखानेके लिए दौडा हुआ विपिन पेडके नीचे आया तो वहाँ कोई न था । इतनेमे सत्य भी आ पहुँचा । उसने इधर-उधर देखा । विपिन अपने खजानेको उस दूब-कालीनपर फैलाकर उसकी देख-भालमें लग गया था ।

सत्यको सहसा दीखा, पास ही गरिमा उस पेड़की तरफ पीठ किये अकेली एक कुंजके पत्रोंसे उलझ रही है । बोला—विपिन, देखो, यह रही तुम्हारी जीजी !

विपिन तो परमात्माकी लूटकर लाई हुई अपनी इस निधिको देखनेमें मग्न था और अचरज मना रहा था । आवाज सुनते ही चौककर, फिर अपना प्रशस्त खजाना बटोर-बटार, जीजीके नामपर खुशीकी एक चीख देकर विपिन उसी ओरको भाग छूटा । सत्य भी चला ।

वह मुडी । विपिन बेतहाशा अपनी जेबोंको सँभालता भागा चला आ रहा है । पीछे सत्य है । क्या करे ?

विपिन पहुँचा—

" यह क्या कूड़ा भर लाया रे ? " कहकर जेबोंकी तलाशी लेनी आरंभ कर दी । चलो, यह अच्छा काम मिल गया ।

" जीजी, यह देखो, ऐसा फूल तुमने देखा है ?—और इस पत्थरमें कितने रंग हैं—एक दो तीन, नीला भी, लाल भी, सफ़ेद भी....! "

" देखा तुमने इसका म्यूजियम ? " कहते हुए सत्य आ पहुँचा।

" देखो न कैसा पागल लड़का है ! "

कहा तो, पर आगे क्या कहेगी सो सोचनेमे लग गई। खजानेकी जाँच-पडताल बन्द हो गई।

अगर कोई उसके जमा किये खजानेकी खूबी नहीं देखना चाहता, न सही। वह खुद क्यों न देख-देखकर खुश हो। विपिन वहीं बैठकर अपना अजायबघर सजाने और फैलाने लगा।

धानी साडीके ऊपर और कुछ नहीं है। वह साडी हवामे कभी कभी स्वच्छन्दतासे लहरें लेनेका प्रयत्न कर रही है। और उसे दाब रखना पडता है। पैरोंमे जूता नही है, और बारीक बारीक उँगलियाँ साडीसे बाहर निकली हैं।

सत्यने अभी इतना ही देखा। अब ऊपर मुँह उठाया। गरिमाका चेहरा अब उस तरह न रह सका,—वह झुक गया। सिरपरका साड़ीका किनारा अस्तव्यस्त हो पडा है, वेणीमें लटें कुछ इधर-उधर बिखर गई हैं। जहाँ-तहाँ एकाध सूखा पत्ता बालोंके घोसलेमे उलझ गया है।

शहरी, सभ्य, पढी-लिखी लड़कीका यह वन्य रूप बडा मनोमुग्धकर जान पड़ा।

" गरिमा ! "

वह चौंकी।

" खड़ी क्यों हो ? बैठ न जाओ। "

सत्य खुद बैठ गया तो वह भी बैठ गई।

" बाबूजी कहाँ गये ?—और बिहारी ? " सत्यके स्वरमें थोड़ी थोड़ी आंतरिक मुस्कानकी सी ध्वनि थी।

गरिमाने समझा, यह व्यग है। उसके अकेलेपनपर व्यंग है। उठकर वह चलनेको हुई।

" क्यों ....? "

बाबूजी यहीं कहीं होंगे। देखूँ। "

" नहीं, बैठो। बाबूजी इस अकेलेपनपर नाराज नहीं होंगे। "

गरिमा लजा गई। सत्यने भी देखा, यह कैसी बात निकल गई !

" आओ, गरिमा, ये छोड़ो। ऐसे बातें कैसे होंगी। और हमें कुछ बाते कर लेनेकी ज़रूरत है। नही तो कहीं हम एक दूसरेको ग़लत समझने लगें। "

गरिमा चुप बैठी है।

" गरिमा, मै वकालत नहीं कर रहा हूँ। तुमसे यह कह देना जरूरी है। मेरा वकालत करनेका इरादा नही है। क्या करूँगा, सो नहीं कह सकता। पर कभी बहुत-सा-धन या मान कमा सकूँगा, ऐसी आशा नहीं है। यह हम सब लोगोंको समझ लेना चाहिए। "

" तो मै इस बातसे क्या करूँगी ? "

" तुम्हारा तो उससे खास सम्बन्ध है। "

अबके फिर उसकी ज़ुबानपर ' पिताजी ' आ रहा है।

" पिताजीकी क्या मंशा है, तुम जानती हो। पर मै तो अपनेको बहुत ही अयोग्य पाता हूँ। "

" आप जो कहें, कह सकते है। पर मै ऐसी बात नही सुनना चाहती। "

" नही, सुनना चाहिए, समझना चाहिए। तुम न करोगी, कौन

करेगा ? और मेरा साफ साफ कह देना कर्तव्य है। मै अमीर नहीं हूँ, न हूँगा। पहली बात, मेरे-तुम्हारे जीवन-क्रममे बहुत अन्तर मालूम होता है। फिर एक और बात है ...।"

गरिमा, जो कहो, सुननेकी प्रतीक्षामे है।

"....वह बात यह है कि पिताजीको मै अभी कुछ जवाब नहीं दे सकता। अभी कुछ भी न समझना ठीक है।"

इसपर तो वह चमक उठी—

"आपको यह मेरा अपमान करनेकी कैसे हिम्मत होती है?"

यह क्या बात! सत्य एकाएक समझा नहीं, चुप रहा।

"मैंने आपको क्या समझा है और आप क्यों यह सब बातें मुझसे कहने बैठे? मै कहे रखती हूँ, मेरे अपमानकी आपकी मंशा हो भी, तो भी अधिकार बिल्कुल नहीं है।"

सत्यने इस दृष्टिसे कभी इसपर विचार किया ही नहीं। पर गरिमाकी भावनाओंको समझकर उसने देखा, सचमुच उससे बड़े अनौचित्यका कार्य हो गया। वह अब उसके प्रतीकारको उद्यत हुआ—

"मै....मैं .."

किन्तु बीचमें ही सुनना पड़ा—

"देखिए, आप यह न समझिए, आपका मुझपर बिल्कुल अधिकार है। इससे आप धोखेमें पड़ सकते हैं।"

सत्य विरोधमे गुनगुनाया। पर क्या कहे!—कि यकायक—

"अच्छा, अब आप क्या अपनी कट्टोकी कुछ बात कह सकते हैं?"

कट्टो! यह उसे क्या जाने! जरूर बिहारीकी शरारत है। बोले—

"आप कट्टोको कैसे जानती हैं?"

"'आप' न कहिए। 'तुम' ही ठीक है। आखिर इतनी सभ्यताकी

जरूरत ? आप तो सभ्यताकी जरूरतसे अपनेको ऊँचा पहुँचा मानते हैं ।....हाँ, कट्टोकी बात कहिए । मै कैसे जानी उसे, आपको इससे क्या ?"

उसने देखा, कैसे एक शहरी लडकी उसे निरुत्तर कर सकती है ! जब वे दोनों अकेले हैं, संसारका कोई नियम जब उनमे अन्तर डालनेको उपस्थित नहीं है, तब कई बातोंमे यह लडकी ही उससे ऊपर है, यह सत्यने देखा और उसपर विजय पानेकी इच्छा हो आई ।

"वह गॅवई लड़की है, बड़ी पगली है, उसका क्या सुनोगी ?"

"बडी पगली है !—सुनूँ तो उसका ज़रा पागलपन ?"

"ऊँह ! छोड़िए ।"

"वह तकिया भी तो उसका पागलपन है न ?"

वह चौका । देखा, बात बढ़ रही है ।—तो यह बात है ! मेरा तो अधिकार कुछ है नहीं, अपने अधिकारकी सतर्कतासे रक्षा भी करनी आरम्भ कर दी ! पर अब वह बातमे कहाँतक झुकता जाय ? बोला—

"हॉ, है तो ।"

"है तो ?—बड़े ठडे दिलसे कहते हैं यह आप !"

"नहीं तो क्या... ।"

"अच्छा, जाने दो ।" गरिमाने कहा और तभी एक, ताजे उठे हुए भावसे उसका चेहरा चमक गया । पूछा, "अच्छा, मै वैसी ही बन जाऊँ तो कैसा ?—तुम्हे अच्छा लगेगा ?"

"तुम बन नहीं सकतीं ।"

"बन सकती हूँ, यही तो तुम जानते नहीं ।"

'आप' 'तुम' पर वह कब उतर आई थी सो उसे पता नही चला ।

" कैसे ? "

" ऐसे—"

कहकर वह झटसे भाग छूटी और पासके एक दरख्तपर चढ़ गई, जैसे बन्दरकी आत्मा उसमे आ गई हो ! सत्य भी उस दरख्तके नीचे पहुँच गया। पहुँचना था कि उसके सिरपर सूखे पत्तो और छोटी-छोटी टहनियोंकी बारिश हो पड़ी।

" अब कैसा ? "

" अब मै पछताऊँगा। " सत्यने कहा।

" पछताना नहीं। कट्टोको दुनियामें सब कुछ न मानने लगना। तकियेकी बात है तो आज एक मुझसे ले लेना। तैयार रक्खा है। "

सत्यको लगा जैसे अब वह यही करेगा। कट्टोको भूल जायगा।

गरिमा उतरी। झटपट विपिनको साथ लिया। हँसती-खुशती एक हाथसे सत्य और दूसरेसे विपिनको पकडकर मानो उड़ाए ले चली। पर बागके दर्वाजेपर पहुँचकर एक अँगुली मुँहपर रखकर बोली—" बस, अब चुप ! "

फिर वह भारी-भरकम गरिमा अपने बजरेमे पहुँची। बाबूजी और बिहारी वही थे।

काश्मीरसे लौटकर बिहारीका विवाह सम्पन्न करनेकी इच्छासे सत्य सीधा अपने गाँव पहुँचा।

११

आये देर नहीं हुई कि कट्टो भागी भागी आई। धोती मैली है, बाल बिखरे हैं, पसीना आ रहा है, हाँफ रही है। हाथ आटेमे सने है।

" आ गये ? "

" हाँ, आ गया । "

" बड़ी जल्दी आ गये । छुट्टी हो गई ? "

" बस, अब छुट्टी ही है । "

" अच्छा तो मै अभी आऊँगी, रोटी बनाकर । अम्माँका जी अच्छा नहीं है । सो मै ही कई रोजसे रोटी बनाती हूँ । सुना, तो ऐसी ही भाग आई ।...बिगड़ो मत, अबकी ठीक होके आऊँगी । "

कहकर रुकी नहीं, भाग गई । मास्टरजी सोचमे पड़ गये । मनमे ही बोले, " कट्टो, ऐसी तू कबतक रहेगी ? नादान लड़की, क्या तू नहीं जानती तेरे आगे क्या है ? नहीं जानती तब तक ही अच्छा है, नहीं तो रोनेके सिवाय तुझे कुछ काम नहीं रहेगा । "

पर मास्टरजीने बीड़ा उठाया है तो करके ही छोड़ेंगे । लेकिन बिहारीकी चर्चा कैसे चलायें ?—यह सोचकर उन्हें लाज आती थी । बात कैसे बढानी होगी ?

थोड़ी ही देरमे कट्टो फिर आ पहुँची । क्या निबट आई ? नहीं तो कपडे तो वैसे ही हैं, वही हाल है ।

" चलो, आज हमारे यहाँ खाने चलो । माँजीसे कह आई हूँ । "

कैसी लड़की है ! माँसे भी पूछ आई ! न वक्त देखा न अपना हाल ! जो सूझा, कर डाला,—न सोच, न विचार, न आगा, न पीछा !

मास्टरजीने कहा—चलो ।

मास्टरजीने सोचा है अपनी बातके लिए इससे अनुकूल कोई अवसर न होगा जब यह परोस रही होगी ।

खानेको बैठे । बहुतोंका आतिथ्य भुगता है, पर यहाँ तो आतिथ्यका नाम ही नहीं । ऐसा निमन्त्रण उन्होंने पहला ही देखा । अम्माँ तो पड़ी

हैं, कुछ मदद कर नहीं सकतीं। कट्टो सीधी चूल्हेके पास जा पहुँची। तवा थाम दिया था। चूल्हा सुलगाकर उसपर तवा रखते हुए कहा—

"बैठो न, थाली ले लो।"

मास्टर साहबको अपने आप, जहाँ दीखे वहाँसे, थाली ले लेनी पड़ी और अपनी समझके मुताबिक जगहपर जा बैठना पडा।

"देखो, वह पटड़ा है और वहाँ पानी रक्खा है।"

यह कसरत भी भुगती, पर यह सब बडा अच्छा लगा। ऐसा बेतकल्लुफीका बर्ताव, इच्छा रहते भी, कभी न कर पाये थे।

"देखो, मेरी रोटी जल जायगी, नही तो मै ही दे देती।"

"और मैंने जो ले लिया।"

"यही तो।....जरा थाली आगेको लाना....और....अरे, नहीं नहीं चौकेसे दूर!"

"यह बडी पाबन्दी है कट्टो!"

"अम्मॉका चौका है, मेरा नहीं। मै तो करती नहीं, पर जिसे बड़े चाहें वह तो कर देना अच्छा ही है।"

"मै कब कहता हूँ बुरा है।"

"हॉ, कभी मत कहना बुरा है।"

इस लड़कीकी बात तो देखो! मास्टरसे गुरुआनी-सी बात करती है। पर मास्टरजीको यह शिक्षा बड़ी मीठी लगी।

आलूका साग और परॉवठे दे दिये गये। उनके साथ नमक तो दिया, आचार भी, पर क्षमा-याचनाका एक भी शब्द नहीं,—जैसे छत्तीस व्यंजन परोसकर सेठ लोग हाथ जोड़कर पेश कर दिया करते हैं।

"वक्त तो था नहीं और कुछ बनाती, और तुम्हें रोटी खिलानी थी जरूर।....साग और दूँ ?....भूखे रहे तो मेरी कसम।"

मास्टरजीने बड़े चावसे खाया। जो कहे, उन्हें स्वाद नहीं आया, वह महा झूठा।

मास्टरजी अपनी बात शुरू करनेकी फिक्रमे थे।

"कट्टो, हमारी भी बात सुनो।"

"सुनती हूँ....यह परॉवठा लो,...क्या कहते हो ?"

"यह पेटपर जुल्म ठीक नहीं।....हॉ, मेरा एक दोस्त है।..."

'देखो, मै सुनती हूँ—परॉवठा जल जायगा तो ?"

"अभी जो गया था मैं, तो वह मेरे साथ था।"

"कौन ?"

"वही मेरा दोस्त।"

"कौन दोस्त ?....कहाँ....ठहरो, मेरा प....।"

"तुम सुनती तो हो नहीं........।"

"सुनती हूँ। निबटनेके बाद मन लगाकर सुनूँगी। अभी तो देखो ...।"

पहले प्रयत्नमें इस अजीब ढंगसे निष्फल होना शुभ-लक्षण न जान पडा। अगर कृतकार्य न हुए तो....?

निबट-निबटाकर वह आई। नई धोती पहने है, बाल सॅवारे हुए हैं, सकुची सकुची आ बैठी है। अबके अपने साथ थोड़ी-सी लाज लेती आई है।

मास्टरजीने भी देखा, यह भी मौका बेढंग हो गया है। ऐसे भारी भारी वातावरणमें बातका रुख बिगड़ न जाय! तो भी प्रयत्न तो करेंगे ही।

" तुम कुछ कहते थे,—" कट्टोने ही शुरू किया।

" हाँ, कट्टो, एक बात कहनी है।"

मास्टरजीने विचित्र दृष्टिसे देखा। कट्टो जरा झपी।

" कट्टो, तुम्हारी सहेली सरमो कहाँ गई ?"

" उसका ब्याह हो गया। सुसराल है।"

" और चिरोंजी ?"

" उसका तो ब्याह अभी बैसाखमे हो चुका—तुम्हे नही मालूम ?"

" कट्टो!...."

कट्टोने देखा कुछ बात बडी देरसे गले तक आई है और वहाँ अटक रही है। अब वह बात निकल ही आना चाहिए। कहा, " क्या ?...."

आवाज गिर गई,—कहीं कोई सुन ले। फिर मानो क्षमा माँगतेसे सत्यके मुँहसे शब्द निकले—

" कट्टो, तुम्हारा ब्याह ....!"

कट्टोके मर्ममें दंश देना क्या उन्हींके भाग्यमें लिखा था ?

कट्टो सुन्न स्तब्ध बैठी रही। धीरे धीरे, धीरे धीरे आँखे उठाईं—यही आँखे! पलकें उनपर झुकी हुई हैं, और वहाँ आर्द्रता फैली हुई है। फिर धीरे धीरे, धीरे धीरे उन्हें गिरा लिया।

" कट्टो, मेरा एक दोस्त है... ।"

जो चाहे कहे जाओ—कट्टोको कुछ मतलब नहीं।

" कट्टो मेरा एक दोस्त है। मेरे जितना ही पढ़ा है। हम दोनों साथ रहे हैं। बड़ा अच्छा है। कट्टो, मेरी बात मानों, बड़ा अच्छा है। बाप वकील हैं, पैसेवाले हैं, बड़े आदमी हैं। कट्टो, वह तुम्हें रानी

बनाकर रक्खेगा। मै इसका जामिन हूँ! कट्टो!—कट्टो!....मानो तो ....?

कट्टो क्या कहे कैसे कहे? उसके पास वही आँखें हैं जिन्हें उठा सकती है और गिरा सकती है। उन्हींमे पढ लो क्या लिखा है,—वही उसका उत्तर है!

"कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी? मेरी एक बात? उसे टाल दोगी? मुझे फिर तुमसे कुछ कहना नहीं रह जायगा।"

उत्तरमे मिला मूक मौन और आँखोंमें भरी विवशता और आर्द्रता। इन्हें पढ़नेमें कौन भूल कर सकता है?

"अब तुम जानो। तुम नहीं जानतीं, तुम्हारे आगे क्या है। फिर कभी इस क्षणके लिए पछताओ तो मुझे दोष न देना!"

आँखोंने कहा, मैं किसीको दोष नहीं देती। पर तुम,—तुम मुझसे ऐसी बातें न कहो।"

"जैसी मर्जी। भगवान् तुम्हारा भला करें।"

इसके बाद दोनों चुप बैठे रहे। फिर उस नीरव त्रास-भरे सन्नाटेको भंग कर कट्टोने पूछा, "जाऊँ?"

"जाओ!"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

वह चली गई।

१२

मनमे एक बात उठी और गिरी, उठी और गिरी। बार बार गिराया गया, लेकिन फिर-फिर वह उठ आती है।

कट्टोका शून्य, नष्ट भविष्य आँखोंके सामनेसे हटकर नहीं जाता। कैसा वह हा-हा-कारसे भरा हुआ है! और वह!—आगे आते विलासको आमन्त्रण दे रहा है।

एक बार फिर बुलाकर चेष्टा कर देखे। बुलाया—वह आई।

साँझ गाढी होती जा रही है। प्रकाश मटमैला हो चला है। कमरेमे सूनी घडियाँ संध्याके अँधियारेमे डोलती डोलती मानों ठहर गई। सत्य एक कुर्सीपर बैठे हैं। वह भी जैसे जड-जगत्के ही पदार्थ हैं, ऐसे निश्चेष्ट और निस्पन्द बैठे हैं।

वायु जैसे प्रविष्ट हो ऐसे चुपचुपाते निरपेक्ष भावसे कट्टोने वहाँ प्रवेश किया। आकर खड़ी हो गई।

तब उठकर सत्यने कमरेका एक झरोखा खोल दिया। अस्तोन्मुख सूर्यकी एक अरुण आभा कट्टोके चेहरेको उजला कर गई। आसपासकी और चीजोंको देखते कट्टोका चेहरा जगमगाता दीखने लगा।

सत्यने देखा,—आँखें आँसुओंसे खूब धोई गई हैं, और फूल आई हैं। जैसे फूली-फूली धुली कमलकी दो लाल पँखुड़ियाँ हो। लेकिन उनके सारे भेद और सारे स्नेहको पलकें मजबूतीसे ढँके हुए हैं। सत्यकी दृष्टि उन झपते-हुए कपाटोंतक पहुँचती है, भीतर नहीं पहुँच पाती, और लौट आती है। आज सत्य उनके भेदको प्राप्त कर अपने हृदयके भीतर छिपा लेना चाहता है। कोई उसे नहीं देख पायेगा।

आज यह अ-मानव मूर्ति, इस अँधेरे वातावरणमे, मानो सत्यकी आत्माको प्रकाश दिखलानेके लिए आई है।

मूर्तिने मुँह ऊपरको उठाया। तभी जैसे बादल सामनेसे फट गये हों, एक तेज सफेद चमकती हुई किरण भरपूर उस उठे हुए मुखपर पडी।

सत्यने एक निगाह देखा और सहम गया। यह तो कट्टोका मुँह नहीं है,- कुछ और ही है। चंचलतासे नहीं, सुष्ठु गांभीर्यसे भरा बालोचित औत्सुक्यकी जगह स्नेहाभिषिक्त प्रणयाकांक्षासे खिलता हुआ यह विह्वलता बरसाता चेहरा कट्टोका नहीं है।

उसी चेहरेने कहा—क्या है ?

" कट्टो, मेरी बात नहीं मानोगी ? "

" मानूँगी। बस, यही नहीं। "

" यही नहीं ?—क्यों ? "

" क्यों ?--सो मत पूछो। इसलिए कि मेरे भाग्यमें नहीं है। मैं अभागिन हूँ। "

" कट्टो,—देखो—"

कट्टोने देखा। भरपूर देखा।

सत्यपर उस समय एक अलौकिक-सी दीप्ति छा गई थी। कुछ भीतर हो गया है, जिसने इसकी देहको दिपा दिया है।

" कट्टो, मुझे देखो।--देखती हो ? "

" देखती हूँ। "

" जाने दो सब बात। मैने तुम्हें बहुत दुःख पहुँचाया। अब उसका प्रतीकार करूँगा। "

" नहीं....नहीं...."

" देख लिया ?—अब बोलो, क्या कहती हो ? मुझे—मुझे क्या कहती हो ? "

कुछ नहीं कहती। सूरज छिप गया है। बस, वह अँधेरेमे अपने मास्टरके पैर टटोल लेना चाहती है।

पैरोंको पाकर कट्टोने अश्रु-जलसे उनका खूब ही अभिसिंचन किया।

१३

सत्य वहाँ ठहर न सके। उनके प्राणोंमें जो एक ज्वार उठा है,—मीठे दर्दका एक तूफान-सा,—वह दीवारोंसे घिरे उस कमरेमे झेला नहीं जा सकेगा। पैर आँसुओंसे धोये जा रहे हैं, और मन देहके बंधनमेंसे फट निकलकर बह रहना चाहता है। कमरेमेसे निकल पड़े सुध-बुध जैसे खो गई, पता नहीं कहाँ जाकर क्या करेंगे! पास ही, गंगाकी नहर बहती है। वहीं पहुँचे। ऊपर चारों ओर बिना सीमाका आकाश फैला है, जैसे माँका अंचल फैला हो। हवा हलकी हलकी बह रही है, मानों उसी माँकी ठंडी उसासें हैं। पासहीमें है वह गहन रोती जाती हुई जलधारा, मानों अपने बच्चोंके छोटे सुखों और बड़े दुःखोंपर उसी माँके बहाए आँसुओंकी धारा हो। माँके इस अंकमें आकर, जो अब सारी सृष्टिको थपकियाँ दे-देकर सुला रहा है, और उनके ऊपर अपना तारोंसे छिटका अंचल तानकर, निरंतर जागरूक, उनकी नींदकी चौकसी कर रहा है,—इस अंकमें आकर उसे कुछ चैन-सा मिला। आनद-व्यथामें बोध प्राप्त हुआ। उनकी सावधानता लौट आई। मालूम हुआ, अब वह नींद चाहते हैं। जीवनके चूड़ान्त उत्कर्षपरसे खिसक आये हैं, तो थकान हो आई है। घर आकर गाढ़ी नींदमें सो रहे।

*   *   *   *

इधर कट्टो सौभाग्यके पहाड़के नीचे दबकर अचेतन-सी हो गई।

जिसके पास तक स्वप्नमे भी पहुँचनेकी हिम्मत नहीं हुई थी, वही सौभाग्य जब एकदम इस तरह सिरपर बरस पडा तो कट्टो विह्वल हुई और फिर बेसुध हो गई। सुध आई तो मास्टर साहब जा चुके थे, वह अकेली ईटके फर्शको भिगोती हुई पडी थी। उठी, अँधेरा था, अँधेरेमे ही धोतीका किनारा माथेके आगेतक सरका लिया, और टटोलती टटोलती दर्वाजेकी ओर बढी।

कही कोई देख न ले! इस सौभाग्यको किसीकी नजर न लगने पावेगी। आज उसमें न जाने कहाँकी लाज समा गई है। धोतीके बाहर अपना अँगूठा दिख जाता है तो सिहर उठती है, सिमट कर वहीं बैठ जानेको जी होता है। आज वह अपने सौभाग्यको साथ लेकर, मन होता है, कहीं गडकर सो जाय कि फिर उठे ही नहीं, कहीं दुबक जाय कि फिर दीखे ही नही। सिमटी-सिमटाई, सहमी-सहमी अचक-से घरमे घुसी और बत्ती जलाकर खाटपर बैठ गई।

रात-भर नींद नहीं आई। उसने भी व्यर्थ चेष्टा नहीं की। सारी रात न जाने कहाँ कहाँ उड़ती रही, धरतीपर तो एक क्षण भी टिक-कर ठहर सकी नहीं।

ओहो, आज उसका छोटा-सा मन फूलकर कैसा हो गया है, मानों सारे विश्वको अपने उछाहसे और अपने प्रणयसे प्लावित कर देगा! सारी रात जगकर उसने एक बात तय की। कल पर्वीके मेलेमे वह जरूर जायगी। बहुत जरूरी तौर पर उसे कुछ चीजें खरीद लानी हैं। मँगा तो सकती नहीं, पता जो चल जायगा!

बारह एक बजेसे इस बातकी टोहमे है, कि कोई पर्वी जानेवाला जगे और यह अपने जानेकी विधि ठीक कर ले।

क्या लायेगी ?—दो चूड़ियाँ लाल, एक बिंदी-टिकियोंकी डिबिया, एक ..उहँ ! वह कैसे बताये ? याद नहीं। ..लाज आती है।.. कल देखा जायगा।

और बात देखो। कैसी गंगाकी पर्वी आई है—ठीक जब कि उसके भी जीवनका पर्व अचानक ही आ पहुँचा है। उसके मनमे सन्देह नहीं, यह इस पर्वीका ही प्रसाद है।

आखिर रात कटी और औरतोंकी तैयारियोंकी धूम सुन पड़ी पडोसके अग्रवाल बनियोंके यहाँसे कई जा रही हैं,—उन्हीके साथ जाना उसने भी ठीक ठाक कर लिया।

१४

सत्य जागे तो नये लोकमे जागे। कल बीत गया, आज नया दिन आया है। यह नया फटता हुआ दिन, रोजके नित्य-नियमित कार्य और आजके विशेष विशिष्ट कार्य आदि आदि उनके मस्तकपर कब्जा जमा बैठे हैं। कल शामकी घटना किसी भूले कोनेमें पड़ गई है। कल कुछ हो तो गया है, पर वह उनके सामने धुँधला-सा है। अभी अवकाश नहीं है कि वह उसे स्पष्ट करके देखे। और कामोंकी भीड़ भी तो है जिसे निपटाना है।

काम खतम होते जा रहे हैं और वह नये नये पैदा करते जा रहे है। बात यह है कि कलकी घटनाकी स्मृति, जो और सब बातोको ठेलठालकर अपने आप सबसे आगे आ खड़ा होना चाहती है,—उसे सामने पाने और सामने लानेसे सत्य डरते हैं। जबरदस्ती व्यस्तता ज्यादे नहीं टिक सकती। खाना खाकर अपने कमरेमे आये, तो कलकी घटनाकी एक एक बात उठकर हठात् उनके सामने आ खड़ी होने

लगी। सबको एक बार देख गये, कुछ समझ नहीं पाये कि यह सब क्या और कैसे हुआ, और कुछ कुछ अपनेपर शर्माये। उन्हें उसकी वास्तविकतापर सन्देह होने लगा।

यह क्या हुआ ? बात तो बिहारीकी करने चले थे। सो तो न हुआ, पर मैं कैसे सामने पड़ गया ? बिहारी क्या सोचेगा ?....आखिर मैंने क्या कहा ? यही कि वह मुझे स्वीकार करती है या नहीं ? वह रो पड़ी, स्वीकार करती है। पर उसने ऐसा कहा तो नहीं !....तो क्या मै उसे अपनाऊँगा ? क्या अपनाना होगा ?

सोचकर देखा, बात कुछ ऐसीही-सी प्रतीत होती है।

तब बहुत-सी बातें बढ़-बढ़कर विरोधमे खड़ी होने लगीं। बाबूजी, गरिमा !....बाबूजी भी कुछ नहीं; और गरिमा—गरिमा भी, खैर, देखा जायगा। लेकिन—लेकिन—?

इस बहुत बड़े 'लेकिन' मे कई बातें थीं,—यह कैसी अजीब-सी बात होगी ?—लोग क्या कहेंगे ? बिरादरी और गाँवमे क्या हैसियत रह जायगी ?—यह सब होगा कैसे ? और—कट्टोकी माॅ !—फिर, फिर मेरी माँ !

यहाँ वह बिल्कुल रुक गया। यहाॅ मानो ऐसा प्रतिबन्ध मिला जिसके आगे गति नहीं, जिसे लाँघ सकता ही नहीं।

माँ यह कभी नहीं होने देगी। सुनेगी तो मर जायगी। थोड़ी-सी बातोंपर वह जिन्दा रहती है। लड़केको इतनी तो रस्सी दी, पर यह अधर्म नहीं होने देगी। रोकेगी तो कैसे—अगर मै अड़ जाऊँ ?—पर जान जरूर दे देगी, इसमें शक नहीं। मौतसे जब वह कुछ वर्षोंके अन्तरपर ही रह गई है तो क्या मैं ही उसकी बची-खुची जिन्दगीके ये बरस छीन लूँ और उसे अपने ही हाथसे मौतके मुँहमे ढकेल दूँ ?

पर...पर कल क्या हो गया है, और....कट्टो!

इसपर उसे ध्यान हुआ कि उसे सुबहसे देखा नहीं। अभी जाकर वह कट्टोसे सब बातें साफ कर लेगा। कट्टोके घरपर जाकर पुकारा—कट्टो!

कट्टोकी माँकी आवाज आई—कौन है?

"मै हूँ, अम्माँ।"

"आओ बेटा!"

भीतर पता चला, कट्टो गंगास्नानको गई है। सत्यने देखा माँ जिन्दगीके दूसरे किनारेके पास आती जा रही है। न जाने कब यह माँ भी छिन जाय!

"बैठो बेटा!....देखो, वह लड़की गंगा चली गई है। मुझमें अब कुस रह नहीं गया, काम नहीं होता। हाथ काँपते हैं,—जिन्दगी-भर काम करते रहे हैं, अब काँपते हैं तो उनका क्या दोष? लडकी नहीं जाती तो क्या था? पर वह अपनी ही चलाती है। बार बार कह चुकी हूँ, देख, ऐसे दुख देखेगी। दुनियासे नीचे होकर रहना अच्छा। मेरे पीछे तेरा कोई सहाई नहीं होगा। तब तू मेरी सीख याद करेगी। अब तो मेरी निभे चली जाती है। पर दुनियामें और माँ तेरे थोड़े ही बैठी है। इसपर वह रोने लगती है। कहती है, 'अम्मा, तू ऐसा मत कह। मै तेरे बाद बहुत थोड़ी जीऊँगी। तेरे सामने तो मै अपनी चला लूँ, फिर चलानेको कब मिलेगा!'....बेटा, वह अजीब लड़की है। फिर फूट फूटकर रोने लगती है। मेरे पैरोंमें सिर रख देती हैं, कहती है, इस सिरमें मेरे एक ठोकर तो दे, माँ, मैं ठीक हो जाऊँगी। बेटा, मैं उसे दोष नहीं देती। अब दस दिनसे तो मैने काम छुआ नहीं, वही सब करती थी। नेक आलस नहीं, नेक कलेस नहीं। फिर ऊपरसे मेरी

टहल। ये उसके कामके दिन हैं, बेटा ?—और बच्ची इतनी पढती हैं, खेलती हैं और खाती हैं। पर इन बातोंमे क्या ? काम ऐसी मुस्तैदीसे करती है, बेटा, कि मै क्या कहूँ। किसी घरमे होती तो रानी ही होती। पर रोयेसे क्या ? जो लिखा था, सो हुआ जो लिखा था सो भुगता। बेटा, मै उसे बिल्कुल दोष नही देती। गंगा गई है, चलो सुस्थ हो आयगी। इतने काममे नेक विसराम भी तो चाहिए। आयगी, तो फिर जुट जायगी। बेटा, एक बात कहूँ ? कहना बिरथा तो है ही, पर कहे बिना रहा नही जाता। बेटा, वह तेरी बड़ी तारीफ करती है। कहती अघाती नहीं। सुपनेमे भी उससे वही सुन लो। बेटा, देख, मेरे पीछे उसकी खबरदारी रखियो। मै भी तेरी माँ ही सरीखी हूँ। तू नही होता तो .. तो...मै .. उसे जहर ही देकर जाती। दुनिया ऐसी बुरी है, बेटा कि क्या कहा जाय। तेरे जैसे यहाँ बिरले होते है,—रतन होते हैं। उनपर ही यह टिकी है, नहीं तो डूब जाती। तेरेमे ही मुझे धीरज है।"

विपदाकी यह कहानी सत्य नतमस्तक हो कर्तव्यसे विमुख होते हुए अपने मनके लिए उपदेश-मन्त्रके रूपमे स्वीकार कर रहा था। अपनी अकेली बेटीको, जो विधवा है और बच्ची है,—इस चूसनेकी घात लगाये बैठी दुनियामे अकेले छोड़ जानेकी तैयारी करती हुई दुखिया माँके कलेजेसे निकला यह दर्द सत्यने वरदानके रूपमे स्वीकार किया। प्रार्थना की कि परमात्मा उसे इसके योग्य बनाये। प्रार्थना की कि उसे अपने संकल्पमे स्थिरता और सामर्थ्य दे। जिस बातको उठानेके ख्यालसे यहाँ आया था, उसे बहा दिया।

माँने फिर कहा—अरे सत्य, तेरा ब्याह कब होगा ? सुनते हैं, लडकी खूब पढ लिख गई है। वह तो कह रहे हैं, पर तू ही मना कर रहा है। क्यों रे, यह क्यों ?

खीरके भोजनमे यह नोनकी अनी मुँह बिगाड़ गई। कडवापन फैल गया। उसी कडवी मनस्थितिमें कड़वाहटके साथ कहा—

"अम्माँ, उसने फिर यहाँ न आने दिया तो?"

"अरे, कैसी बात करता है रे!"

"अम्माँ, मै तो गाँवका हूँ, वह शहरकी है।"

"हिश-श्-त्!"

"अम्माँ, मै तो अभी करता नहीं। करूँगा इसका भी क्या पता?"

"मै तो अपने लिए कहता हूँ रे। कट्टो,—एक बात कहूँ, तैने 'कट्टो' नाम बडा अच्छा रक्खा है, वह कट्टो ही है, कट्टोको एक जीजी मिल जायगी। तू सदा उसे पढ़ानेको थोड़े ही बैठा रहेगा, अपने कामपर लगेगा। बस, वह इसे पढाया करेगी, शऊर सिखायगी और यह उसकी टहल करेगी। मै उसे सब समझा जाऊँगी। नेक बेअदबी करे, आनाकानी करे, उसे काट डालना। पर रखना उसे अच्छी तरह।"

"देखो, अम्माँ, क्या होता है। जो होगा सो होगा। और सब अच्छा ही होगा, पर अम्माँ, कहता हूँ, तुम्हारी कट्टोको कुछ मुश्किल नहीं पड़ने दूँगा।"

"नही। कट्टो तब तक खुश नहीं होगी जब तक तू ब्याह न करेगा। वह अभीसे कह रही है,—जीजी आयगी तो वह उससे पढा करेगी। और उसकी सेवकाई करेगी।"

"अम्माँ....।"

वह इसका बातका प्रतिकार करना चाहता है। क्या वह नहीं जानता कि इससे भी बड़ी खुशी उसके भाग्यमे हो सकती है। क्या वह कट्टोको नहीं जानता कि उसकी बड़ी खुशी किस बातमे होगी? और क्या वह उसीके लिए नहीं तैयार हो रहा है? पर उसने कहा,

'अम्माँ,'—और वह रुक गया। जैसे किसीने जबानको पकड़ लिया, 'यह क्या कहता है?—अम्माँ इस बातपर क्या सोचेंगी?'

लेकिन असमाप्त बातका ध्यानकर वह अपनेसे प्रसन्न हुआ। उसीके आवेशमे अटकी बातको खतम करते हुए कुछ हँसकर बोला—

"अम्माँ,....कट्टोकी जीजी आई, और उसने कट्टोको प्यार नहीं किया तो मै उसका सिर तोड़ दूँगा।"

"और कट्टोने गड़बड़ की तो उसका भी सिर तोड़ देना, मै कहे देती हूँ। कहीं भी हुई, मै इससे बड़ी खुश हूँगी।"

माकी बातोंसे उसने बहुत कुछ दृढ़ता पा ली और स्वस्थचित्तता भी। तब कुछ देर और ठहरकर और माँको हँसा-हँसूकर वह घर आया।

१५

पुरुष बनाता है, विधाता बिगाड़ देता है,—अँग्रेजीकी एक कहावत है। संशोधनकर यह भी किया जा सकता है,—पुरुष बनाता है, स्त्री बिगाड़ देती है। तब भी कहावतमें कम तथ्य या कम रस नहीं रहता। बात वास्तवमे यह है कि पुरुप कम बनाता या बिगाड़ता है। इसी तरह पुरुष कुछ नहीं बनाता बिगाड़ता, जो कुछ बनाती और बिगाड़ती है स्त्री ही। स्त्री ही व्यक्तिको बनाती है, घरको—कुटुम्बको बनाती है; जाति और देशको भी, मै कहता हूँ, स्त्री ही बनाती है। फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है। आनन्द भी वही और कलह भी; हराव भी, और उजाड़ भी, दूध भी और खून भी; रोटी भी और स्कीमे भी और फिर अपनी मरम्मत और श्रेष्ठता भी,—सब कुछ स्त्री ही बनाती है। धर्म स्त्रीपर टिका है, सभ्यता स्त्रीपर निर्भर है, और फैशनकी जड़ भी वही है। बात क्यों बढ़ाओ, एक शब्दमें कहो,—दुनिया स्त्रीपर टिकी

है। जो आँखोंसे देखते हैं, चुपचाप इस तथ्यको स्वीकार कर, दबके बैठे रहते हैं, ज्यादे चूँ नहीं करते। जिनके आँखें ही नहीं वह मानें या न मानें, हमारी बलासे।

सत्य कट्टो और गरिमाके बीचमें इधरसे उधर टकरा रहा है। अभी कुछ स्थिर कर पाया था कि कट्टोकी माँने ढा दिया, वहाँसे कुछ स्थिर करके चला तो यहाँ अपनी माँसे मुकाबला हुआ।

खाना खिलाते-खिलाते माँने कहा—सत्य ब्याह अब और नहीं टल सकता।

सत्यने कुछ गुनगुन किया।

"नहीं। बहुत देखा। अब तुझे मेरी माननी पड़ेगी।"

"अम्माँ, मै....।"

"मैं–मै कुछ नहीं। जो कह दिया, बस।"

"मैं नहीं कर सकता; माँ, तुम जानती नहीं।"

"क्या नहीं जानती?"

"कुछ नहीं, लेकिन....।"

"क्या लड़कीमें कुछ है?"

"नहीं नहीं, माँ। लेकिन...."

"फिर वही। मै जानती हूँ, लड़की बड़ी अच्छी है। तू भी उसे चाहता है। मैं और कुछ नहीं सुन सकती।"

"माँ, मै नहीं कर सकता।"

"नहीं कर सकता! क्यों?—सुनूँ तो।"

"मैं....मै...."

कुछ बोलता है नहीं,—कहता है, नहीं कर सकता!"

"माँ....मै...."

"नहीं करता तो जी चाहा कर। यह माँ भी तेरी ज्यादे नहीं बैठी रहेगी।"

फिर उमडन आई। मॉका मुंह बिगडा, हिला। सत्य रोना नही झेल सकेगा। बोला—मॉ ..।

"मैने क्या किया जो अपनी बहूका मुँह नहीं देखा। हाय, ऐसे ही मर जाऊँगी!"

अब मॉ फूट पड़ी। सत्य चलनेको हुआ,—ठहरा कैसे रह सकता था? खाना छोड उठा, हाथ धोये,—तब मॉने एक चिट्ठी जो बराबर उनके हाथोंमें थी सत्यके पास फैक दी।

सत्यने देखा, बिहारीकी चिट्ठी है। मॉके नाम है। बिहारी दो एक रोजमे यहाँ पहुँच जायगा। बाबूजी शादीका सब कुछ ठीक-ठाक कर लेना चाहते हैं। इसी लिए बिहारी आ रहा है।

यह जानकर सत्यपर बर्फ-सा पड गया। बिहारीसे किस मुँहसे मिलेगा। और शादीका कैसे क्या होगा! सिरकी पीडाको हाथोंमे लेकर खाटपर पड़ रहा और सो गया।

१५

कट्टो गंगाजीसे बड़ी बड़ी चीजे लेकर लौट आई है। अम्मॉके पास आई—"अम्माँ, मै गंगा चली गई, तुम बिगड़ी तो नहीं? तकलीफ़ तो हुई होगी। अम्मॉ, पर्वी अबके जरूर नहाना चाहती थी। अब कहीं नहीं जाऊँगी।"

"बेटा, कुछ नहीं। पीछे तेरे मास्टर आये थे। मैने तेरी बात कह दी।"

"क्या अम्मॉ?"

"यही कि तेरी जीजी झटपट ले आये, तू अब उसीसे पढना चाहती है।"

ओहो, एक भेदकी बात कट्टोके पास है! अम्माँ जानती भी नहीं। इस विशिष्ट-अधिकारपर कट्टो गर्वसे भर रही है। बोली—

"अम्माँ, तो उन्होंने क्या कहा?"

"कहा क्या?—तेरा मास्टर अजीब है, कट्टो। बोला, देखा जायगा, अभी जल्दी काहेकी है। कट्टो, क्या पता वह शायद ऐसा ही रह जाय!"

हाँ, कट्टोका मास्टर अजीब है पर यह माँ क्या जाने उसका अजीबपना!

"कट्टो, मेरी बातपर वह कहता था कि कभी तेरी जीजी आई भी और उसने तुझे पढनेमे यह वह किया तो सिर फोड़ दूँगा।"

कट्टो बहुत सुन चुकी, आगे और कुछ सुनना नहीं चाहती। पूछा—

"अम्माँ, आज क्या राँधूँ?—चावल?"

"जो चाहे?"

वह भाग गई। भागकर चौकेमे नहीं गई, अपने कमरेमे आई। वहाँ एक तेलसे चिकने हो रहे आलेमें अभी अभी ताज़ी ताजी बिसातीसे खरीदी एक टिकुलीकी डिबिया, एक छोटा-सा दर्पन, एक राधा-किसनकी तसवीर,—ऐसी ऊट-पटाँग चीजे सजाकर रख दी हैं। यहाँ आकर, उस छोटेसे दर्पनको लेकर, दोनों भौहोंके बीचोंबीच, जरा ऊपरको, सींकसे उस डिबियामेसे, बड़ी नन्हींसी एक टिकुली लगा ली। देखती रही,—कैसी यह लाल लाल बिन्दी काली पडती जा रही है।

तभी दर्पनको फेक देना पड़ा और धोतीके छोरको माथेके एकदम आगे खींचकर, भागकर कमरेके एक कोनेमे सिमट बैठ गई। हाय! लाज आती है!

"मै कैसी लगती हूँ—कैसी लगूँगी? मास्टर देखेंगे तो क्या सोचेंगे?—ऊँह, देखेंगे ही नहीं। मै जाऊँगी नहीं। फिर याद जो करेंगे!—करे, मेरा क्या?....मै तो नहीं जाऊँगी।....कैसे जाऊँगी?"

तभी एक बात उठी।

"मै गई ही—और उन्होंने 'कट्टो' कह दिया तो?—वह ऐसे ही हैं, समझते हैं नहीं, कुछ भी कह देंगे।....उन्होंने कट्टो कहा, तो—तो मेरा तो मरन हो जायगा।"

इस बहकमें सोचते सोचते तीव्रता आ गई। तभी वह कोनेमेसे उठ आई। हाथके एक झटकेसे धोतीका छोर पीछे जा पड़ा, सिर उघड़ गया। उघड़ा रहा,—सो क्या हुआ! दावात क़लम काग़ज ले आई और खाटपर बैठकर लिखने लगी। बिन्दी वहीं माथेपर बैठी बैठी ऊपर उघड़े सिरको देखकर और नीचे इस लिखी जाती हुई चिट्ठीको देखकर चुप चुप कैसी लाल लाल हंसी हँस रही है।

१७

सत्य सोकर उठा तो कुछ समझ नहीं पा रहा है। पास ही वह बिहारीकी चिट्ठी सिकुड़ी सिकुड़ाई पड़ी है। उसने अनमनाये मनसे उसे उठाकर पढ़ा। जैसे पहली ही बार पढ़ा हो,—वह चौंक उठा।

क्या होगा? वह क्या करे? माँको मर जाने दूँ?....बिहारीसे क्या कहूँगा? उसे क्या सफाई दे सकूँगा? और वह मनमें क्या समझेगा?

यह कट्टोने बीचमें आकर क्या गड़बड़ मचा दी है! वह कौन है?—मेरी क्या लगती है? मुझे उसका क्या देना है?—फिर वह मुझे क्यों इस तरह तंग करती है?

तभी किसीने चुपकेसे कानमें कहा—

" वह कहाँ तंग करती है ?—इतने दिनसे तुम्हारे पास आई तक तो नहीं। वह तो तुमसे कुछ कहती नहीं। अपने चुपचाप दिन काट रही है, वैसे ही काट ले जायगी। "

सत्य बड़े झमेलेमे है। बड़े संकटमें है। रहरहकर सोचता है, मै क्यों व्यर्थ अपने ऊपर ज्यादा जिम्मा लेकर विधाताके काममें अड़चन डालूँ ? होने दो जो हो, मै कुछ नहीं बोलता। लेकिन रह-रहकर मानस-क्षेत्रमे आँसुओंसे पद-प्रक्षालन करती हुई उठ आती है वह कट्टो!—जो कहती है, 'मै कुछ नहीं कहती। मै किस लायक हूँ ? जो चाहे सो करो।"

यह गड़बड़ उससे खत्म होती मालूम नहीं होती। वह क्या करे ? सोचा, अपनेको निश्चेष्ट,—ढीला छोड़ दूँ। जो होगा, हो जायगा।

लेकिन इस तरह देखा, निश्चेष्टतासे कुछ नहीं होगा। यही होगा कि बाबूजी जीत जायेंगे, कट्टो हार जायगी। जो हारता रहा है हारेगा, जो जीतता रहा है वह जीतेगा। और कट्टो इस हारको ही प्राण-पणसे स्वीकार कर दूसरेकी जीतको खट्टा बना देगी। कट्टो तो जीवनके इस खेलमें हारका ही दाँव आगे बढाकर चलती है, इसलिए जो मिलता है उसीमें उसकी जीत है।

सोचते सोचते उसका सिर मानों धुन डाला गया है। एक ओर अपनी बातकी रक्षा है और बेचारी कट्टोकी रक्षा है। दूसरी ओर अपनी हैसियतकी, अपनी माँकी, अपने सब कुछकी रक्षाका ख्याल है। और कट्टो, क्या सचमुच आवश्यक रूपमें उसके ही द्वारा रक्षणीय है ?

कट्टो, मै अपनी माँके पास जाता हूँ। पैरोंमें सिर रखकर कहूँगा, 'माँ, बहुत दुःख दिया। अब और दुःख न दूँगा। आज्ञा करो।' यह सोचकर अपनी माँके पास जानेके लिए वह संकल्प कमानेमे लगा।

तभी मुँहपर नाक और धूलकी लेही लेपेटे अग्रवालोंके घरकी खीरा आ खड़ी हुई।

"क्यों, खीरा बेटी, क्या है?"

"ये कागद," कहकर उसने हाथकी मुट्ठी खोल दी।

"किन्ने दिया?...

'उन्ने ही ..." कहकर वह अपना बताशेका इनाम लेने चली गई। बुरी तरह गुड़ीमुड़ी हुआ वह बदामी कागज खुला—

"मेरे ...मेरी एक बात है। उड़ाना नहीं, बुरा होगा। मुझे अबसे कट्टो मत कहना। लाज आती है। ब्याह हो जाय तब चाहे जो कुछ कहना। उससे पहले नहीं,—तुम्हें मेरी कसम।—कट्टो।"

"पीछे तुम अम्माँके पास गये, मुझे पता चल गया है। क्यों गये? मेरे कारन सोचमे मत पड़ना। —कट्टो।"

खत पढकर उनका माँके पास-जाना रुक गया।

१८

बिहारीको घरपर चैन नहीं पडा। भीतर जो कट्टोका कल्पनाके सहारे बनाया हुआ एक चित्र बैठ गया है, वह दिलको गुदगुदाता रहता है। इसी लिए पिताको वह पत्र लिखानेके लिए उकसाया और इस तरह गाँव आनेका बहाना प्राप्त किया। बाबूजी भी अब सचमुच बहुत बाट देखते बैठना नहीं चाहते। वह सत्यको खो देनेको तैयार हैं, पर इस वर्षसे आगे गरिमाका ब्याह टालनेको तैयार नहीं।

पिताकी इन सब इच्छाओंको समझकर और कैसे क्या करना होगा, इस सबका भी खाका मनमे बिठाकर बिहारी सत्यके गाँवके लिए रवाना हुआ।

कट्टो कैसे मिलेगी, कैसी होगी? इन सब संभावनाओंपर उसकी कल्पना दौड़ रही है और उसे चुटकियाँ ले रही है। वह अपनी कल्पनाओंको बहकाना चाहता है, पर वे न किताबमे और न रेलके बाहरके खेत और जंगलके दृश्योंमे ही अटक पाती हैं,–वे तो छूट छूट कर वहीं गाँवकी कट्टोके पास भाग निकलती हैं।

वह गॉवमे कभी नहीं आया है। तो भी उसे दिक़्क़त न होगी,—वह सब ठीक ठाक कर चुका है।

कट्टो पानी भर रही हो तो—! तो मुझे क्या समझेगी?—क्या करेगी?

ओह! अगर कही मास्टर साहबके पास पढती हुई मिली तो बडा मजा है।

....भई, बडी अच्छी बात होगी। मै गाँवमे रहने लगूँगा। एक झोंपडी बनवा लूँगा। शहरमे रहना कुछ नहीं,—तमाम दुनियाकी आफत! उसे तो मै शहरी कभी नही बनाऊँगा। देखीं तो हैं शहरकी,—मानो आसमानपर चढ़ जायेंगी!...नही जी, गॉवमे रहेंगे हम,—मै और कट्टो।...बाबूजी कहेंगे तो कहो,—मुझे नहीं पसन्द यह वकालत। मनहूसियत छा जाती है। जिन्दगीका मजा कुछ रहता ही नही। पैसा, अदालत, मुवक्किल और झूठ और फ़रेब, और....। नहीं बढिया किसान बनकर रहूँगा। फिर अपनी अँग्रेजी डिग्रीको, चोगों और सनदोको खूँटीपर लटकाकर कहूँगा,—लोगो, वह रही तुम्हारी वकालत और वह रही तुम्हारी अँग्रेजी! उन्हें हाथ जोडो, मुझे छोड़ दो। मुझे चुपचाप किसान बनकर रहने दो। कैसा मजा रहेगा! खुशीसे भरी और फ़िक्रसे खाली, मनुष्यतासे भरी और बनावटसे खाली,--बड़ी सुन्दर जिन्दगी होगी वह। लोगोंसे कहूँगा,—सलामत रहें ये सनदे, इन्हें

लटका रहने दो, (कभी कभी झाड़नसे उन्हें झाड़ दूँगा) पर मुझे तो मेरी किसानी भली, और मेरी गाय,—गाय एक जरूर रक्खूँगा और वह मेरी कट्टो!....

इसी तरहकी बहकमें वह बेरोक बह चला। रेलमें बैठे बैठे इस तरह जो बग़ीचे उसने बनाये और किले खड़े किये, उन सबके बीचमें आ प्रतिष्ठित होती थी यही कट्टो!

तब वह सोचता था, बनी रहे यह तन्दुरुस्ती और यह शरीर, अपने झोपड़ेमें मै कट्टोको महारानी बनाकर रक्खूँगा। रुपया मुझे नहीं चाहिए। सब सत्यको दे दिया जाय तो ठीक। वह इसके काबिल भी है। मै तो ऐसा ही ठीक रहूँगा।

गाँवमें आखिर वह आया। लड़कियाँ राहमे मिलीं,—पर कट्टो तो कोई नहीं है। क्या वह उसके ताँगेको इस तरह देखती रह जाती? न जाने क्यों उसे विश्वास है, कट्टोको पहचाननेमे भूल वह कभी कर ही नहीं सकता।

सत्यके मकानपर पहुँचकर चिल्लाया—मास्टर साहब!

सत्य सो रहा है। अपनेसे निबट नहीं सकता तो सोना ही उसका काम रह जाता है।

सत्यकी माँ आई। झिझकती हुई घूँघट आगे डालनेको तैयार। देखा, कोई सत्यका समवयस्क है,—बिहारी ही न हो!

"दिल्लीसे आ रहे हो भाई?"

"हा जी।" समझ गया वह माँजीके सामने है। झटसे पैर छुए।

"मै बिहारी हूँ।"

"सो ही तो मै समझी।"

"सत्य दादा कहाँ है?"

" ऊपर सो रहा है। "

सामान रख-रखाकर कहा—माजी, मै ऊपर जाऊँ ?

" हाँ हाँ। वह जीना है। "

बिहारीको जल्दी हैं। कट्टोके कारण सत्यसे मिलनेकी जल्दी है। झट ऊपर पहुँच गया।

सत्य सो रहा है। जगाये या न जगाये ? पाँच-सात मिनट बैठनेके बाद बिना जगाये उससे रहा न गया।

" मास्टर साहब ! "

" मास्टर साहबको झकझोर उठाना पड़ा। उठे।

" बिहारी !— बिहारी तुम ! "

बिहारीने कहा—" हाँ हाँ, अभी टपक पड़ रहा हूँ। घबड़ाओ नहीं, हौआ नहीं हूँ, सदेह बिहारी हूँ। यह प्रमाण लो। " कहकर, एक बार कन्धा पकड़कर फिर झकझोर दिया। "

मास्टर साहब अपने-पनमें आये।

" आओ, बैठो। "

आया भी हूँ, और बैठा भी हूँ। अब आदमी बन चलो, सुना ? यों रोते-से मत बने रहो। "

दोनों फिर दो कुर्सियोंपर बैठ गये। बात शुरू होनेकी देर थी, बिहारी बोला—हाँ कट्टो....।

मास्टर साहबने चिहुँककर कहा—कट्टो !....

और उनकी दृष्टि उस दूर क्षितिजके ऊपर उड़ती हुई चीलपर जा पड़ी।

१९

जिस बातको कहना है उसको अब तक गलेमें अटकाये रक्खा

जाय ? लेकिन कहनेमें बड़ी कठिनता होती है। जैसे आत्मग्लानिका घूँट जो उबककर मुँहमें आता है, उसे फिर गलेके नीचे उतार लेना पड़ता हो! सत्य दोनोंके ही अपराधी हैं,—कट्टोके भी और बिहारीके भी। दोनोंको बढाया, और अब दोनोको खोकर आप बच निकले जा रहे हैं। तो भी सारी कहानी सच सच कह दी।

पर बिहारी मर्द है,—सच्चा बिहारी है। इतनी मेहनतसे अभी अभी जिस भविष्यके स्वर्गको खड़ा किया था, और जिसे अभी सजा ही रहा था, उसको सत्यने नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। और सत्य ही वह व्यक्ति है जिसने उसे उस भविष्यकी दागबेल डालनेको निमन्त्रित किया था। लेकिन अभी तो उस भविष्यके चकनाचूर ढेरके पास खड़ा होकर वह सिर सीधा रखकर मुस्करा ही देगा, पीछे फिर चाहे कितना ही रोये। वह अभी तक अपनेसे अलग खडी हुई निराशाके अँधेरेका छेदन कर यह भी देखता है कि सच पूछो तो इस जगतमें कहीं किसीपर भी दोष रखनेमे अर्थ नहीं है। लेकिन सत्य एक बात कहकर उससे डिग रहा है, यह उसकी समझमे नहीं आता। उसने कहा—

"चलो, मेरा झगड़ा छोड़ो। लेकिन अब तुम क्या करोगे?"

"माँको मार नहीं सकूँगा।"

बिहारी जानता है कि उसकी बहिनका मामला है। पर बिहारी असमंजसको बहुत जल्दी काट फेकता है। उसने अपने जीवनका आदर्श कुछ बहुत ही स्पष्ट और निर्णीत धाराओंपर गढ रखा है। उसमे ज्यादे हेर-फेर और घुमाव-फिराव नहीं है। इसीलिए ऐसे मौकोंपर वह संकटमें नहीं पड़ता। इसीलिए वह सदा हलका हलका बना रह सकता है,—क्योंकि वास्तवमें वह खूब भारी है। उसके व्यक्तित्वका लगर खूब गहराईमे बड़ी मजबूतीके साथ एक निष्ठामें गड़ा हुआ है। इसलिए वह चाहे दुनियाके पानीपर कितना ही लहराता क्यों न रहे,

Buoy की तरह, डिग नहीं सकता। एक ओर गरिमा और दूसरी ओर कट्टो,—इन दोनोंके बीच अपनी राह बूझते हुए सत्यको इसीलिए बिहारी ठीक निर्णय दे सकता है। बिहारीने कहा—

" कुछ भी कहो। मै होता तो मै अपनेको छल न सकता। "

" यह बात नहीं है, बिहारी। लेकिन ...कुछ और ही बात है। "

" मुझसे पूछते हो तुम ? मै तो यह कहूँगा कि तुम आत्म-प्रवंचन करते हो, और उसके साथ चलनेवाली जो आत्म-ग्लानि है उसे अपनी माँ और बाबूजी और गरिमाकी ओट बैठकर बचा जाना चाहते हो। सो नहीं होगा, सत्य। "

" तुम अन्याय करते हो बिहारी। "

" ऐसा समझो, ऐसा ही सही। लेकिन, सत्य, तुम थोड़ा अन्याय नहीं कर रहे हो। "

" मै बँधा हुआ हूँ। "

" वचनसे नहीं ? "

" उससे भी ज्यादेसे,—कर्तव्यसे। "

" कर्तव्यसे ?—ओहो ! फिर तो आगे जुबान बंद। इस शब्दके आगे तो मैं घुटने टेककर बैठ जाता हूँ। जी तो कुछ और होता है, पर इस शब्दकी अद्भुत पवित्रताको यादकर हाथ ही जोड़ देने पडते हैं। अभी काली माईके पडोंसे कुछ कहूँ तो इसी थैलीका एक शब्द सुन पड़े—धर्म ! जहाँ धर्म और कर्तव्य बहुत सुन पडते हैं, वहाँ मुझे कानपर हाथ रखनेके अतिरिक्त कुछ काम नही रहता। सुना सत्य ? "

बिहारीकी यह वक्तृता सत्य पचा नहीं सका। अब तक वह अपनेको बड़ा मानता था। लेकिन जब देखा कि बिहारी बिना प्रयास यह अतर लॉघ सकता है तो यह अनुभव सत्यको रुचिकर न हुआ। कहा—

" बिहारी, यह लेक्चर देना कबसे सीख गये ? "

" नहीं नहीं, माफ करो।....तो फिर क्या तुम निश्चयपर आ गये हो ? " अभी निश्चयसे जरा जरा दूर थे, पर बिहारीके शब्दोंने मानों धक्का देकर उन्हें वहाँ पहुँचा दिया।

" हाँ, अपनी मॉसे आज ही कह देना होगा। तुमको तो इससे प्रसन्न होना चाहिए।"

" हाँ, हाँ, क्यों नहीं। मै आया ही इसलिए हूँ। लेकिन एक बात बताओ,—कट्टोसे तुमने कह दिया है न ? "

" न...."

" न ?—कहा नहीं ? बड़े सुस्त हो। जरा शंका थी, तभी यह बात उसे कह देनी थी। लेकिन अब न कहना, यह काम अब मुझे करना होगा। पर एक काम करोगे ? "

" बोलो..."

" एक बार कट्टोको बुलाना होगा, मेरा परिचय कराना होगा। "

२०

दोनों मित्र बैठे हैं, अपने अपने ध्यानमें हैं,—और प्रतीक्षामें हैं। कट्टो अब आना चाहती है। कट्टो आना चाहती है,—कहीं खटका न हो। समय मानो रुक गया है, हवा ठहर गई है। मित्रोंकी निकलती हुई साँस ही मानों वहाँ कमरेमें सचल वस्तु है।

कट्टो आई। छायाकी तरह, चलती हुई मूर्तिकी तरह।

हैं, य' कौन! एकदम बहुत लम्बा घूँघट निकल आया और वह दर्वाजेके पास ही, इधर पीठ करके, दोहरी होती हुई खड़ी हो गई।

बिहारीके मनमें हुआ सत्यको शाप दे डाले।

सत्यके जीको जैसे कोई ऐंठकर निचोड़ने लगा।

सुन्न सन्नाटा रहा। किसीको बोल नहीं आया। तीनोंके मनसे न जाने क्या क्या निकलकर अलक्षित और अव्याहत रूपमे उस कमरेकी शून्यतामें व्याप्त हो गया। एक भारी त्रास सारे कमरेमें इन तीनोंहीके जीको घोंटने लगा।

अब बिहारी जागा। सत्यकी जीभ मानों जकड़ गई है,—वह मानों रो देगा, बोल नहीं सकेगा। ऐसे संकटमें बिहारी ही त्राण देगा उसने कहा—

" भाभी !..."

सत्य काँप उठा। कहीं वह अभी दयाकी भीख न माँग उठे !

कट्टो, अगर हिल सके तो किवाड़के पीछेवाली परछाहींमें समा जाय। ' भाभी ' इस शब्दके अर्थने मानों बिजलीकी तरह उसके शरीरमें कौंध कर उसे सुन्न कर डाला।

" भाभी !—यह नहीं होगा। मैं पर्दा नहीं करने दूँगा।" यह कहा और पास पहुँचकर दोनों हाथोंसे दो छोरोंको पकड़कर बिहारीने घूँघट उलट दिया।

ओः बिहारी, यह न करो, लाज करो, तरस खाओ। देखो, वह काँप रही है, मुड़ती जा रही है, सिंदूर-सी पडी जा रही है.!—कहीं और कुछ न हो जाय !

बिहारीने देखा,—माथेपर नन्हीं-सी टिकुली है, बाल चिपटाकर सँवारे हुए हैं, हाथोंकी दो लाल चूड़ियाँ उझक कर अपनेको दिखला देना चाहती हैं।

उसके जीमें उठा कि हाय, सत्य तू पशु है !

अब क्या सिंदूरिया रंग ठहरेगा ? टिकुली क्या फिर लगेगी ? क्या यह गाँवकी लड़की दूसरी बार अपनेको ऐसा सँवारनेका अवसर पायेगी ?

हाय, अगर बिहारी... ? लेकिन....

" भाभी ! ऐसे नहीं खड़ी रह सकोगी । .. तुम्हारा नटखट बिहारी आया है । वह तुमको अपना परिचय देना चाहता है । चलो उसकी सुनो । "

कलाई पकड़कर उस मुर्झाती हुई बालाको निर्दयी बिहारी खचेड ले चला । ले जाकर कुर्सीपर प्रस्थापित कर दिया ।

अब खून उसमे दौड रहा है । गड़ तो कहीं पाई नही,—और अब अवसर निकल गया । अब हठात् वही दरख्तवाली कट्टो बने बिना उससे नहीं रहा जायगा । वैसे यह अपनेको बिहारी कहनेवाला निर्दयी भी उसे क्या यों ही छोड़ देगा ?

अब कट्टोकी गर्दन उठी । आँखें उठीं, फैलीं, कोयोंमे जरा स्निग्धता आई । वही आँखें जिनमें छना हुआ स्त्रीत्व भरा है ।

" देखो अब मै पराया नहीं हूँ । बताऊँ, मै कौन हूँ, क्यों आया हूँ ? " बिहारी उन आँखोंमें प्रोत्साहन पाकर बोलता ही रहा, " बताऊँ—इन तुम्हारे मास्टरजीपर कुछ रोजसे एक भूत आने लगा है ।...."

ओंठ फैले, जहाँ अभी गुलाबी-सी चमक थी गालोंमें, वहाँ अब एक छोटा-सा गड्ढा पड़ गया । वह मुस्कराई ।

" उस भूतका नाम है गुम-सुम । जिसपर चढता है उसे गुम-सुम कर देता है । मै भूत उतारनेमे खूब होशियार हूँ । बरसों मै इनके साथ पढा हूँ,—यह मेरी तारीफ़ जानते हैं । इस भूतकी बात जानकर फौरन दौड आया हूँ । देखो भाभी, अब करता हूँ चेष्टा इनके भूत उतारनेकी ! "

कट्टो हँसी—

"चुप क्यों बैठे हो जी !–नहीं तो यह शुरू करें उतारना तुम्हारा भूत !"

अपने साथ बहुत जोर लगाकर, "अच्छा, बिगड़ो मत। और कोई नाम भी तो नहीं मिलता—क्या कहूँ?" सत्य आखिर बोला—

"कुछ भी कहो—हम नहीं जानते।"

"अच्छा....यह मेरे साथी हैं। मैने एक रोज तुमसे जिक्र किया था, यह वही हैं।"

बात खतम नहीं हो पाई थी कि कट्टोने बिगड़कर बिहारीसे कहा—

"तुम...."

तभी कुछ हो गया कि उसने फिर घूँघट आगे बढ़ा लिया—पहले जितना नहीं, ज़रा थोड़ा।

"भाभी, मै तुम्हें अब शर्माने न दूँगा।" कहकर उसने घूँघटको वैसे ही उठा दिया।

लेकिन अब कट्टो अदब नहीं भूल सकती।

बिहारीने कहा, "एक मिनटमें बड़ी-बूढी हो जाना चाहती हो तो तुम्हारी मर्जी। लेकिन एक बात कहो। मैं तुम्हारे घरपर आऊँ तो भोजन दोगी न?"

कट्टोने अपने मास्टर साहबकी ओर देखा, इस भावसे कि—आज्ञा है? फिर कहा—

"हॉ, कल सबेरेका निमन्त्रण है। याद रखना, भूलना नहीं। इन्हें भी साथ ले आना।"

२१

इसी डाकसे बाबूजीको दो पत्र गये हैं। बिहारीने लिख दिया है,—सब ठीक है, मुहूर्त निकलवा लें। सत्यको राजी समझिए। सत्यकी माँ जल्दी ही चाहती हैं।

इधर बिहारीकी शोखी देखकर सत्य फिर पल्टा खा गया है। साथ ही समझता है,—आनाकानी करते रहनेमें भी कुछ बात है। उसने बाबूजीको यह पत्र लिखा है—

" बाबूजी, बिहारी आ गया है, प्रसन्न है। उसे लौटनेमे विलम्ब हो तो आप चिन्ता न करें। मैं उसे जल्दी नहीं लौटने दूँगा। कब तो आया है। "

"... मैने आपको एक लड़कीकी बात कही थी। आप भूले न होंगे। पिछले दिनोंमे कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उठ आईं कि मुझे उसकी विशेष चिन्ता करनी पड़ी। वह बाते मै आपको लिख नहीं सका, अब भी खुलकर लिख नहीं सकता। शायद बिहारीने आपको कुछ लिखा होगा। बिहारीको मै अपना पूरा दिल कैसे दे सकता हूँ? मालूम नहीं, बिहारीने क्या लिखा है। लेकिन मै तो अभी पूरी तौरसे हाँ कर नहीं सकता। उस लड़कीसे कुछ बातोंमें मै बँध बैठा हूँ। वह मुझे न जाने किस ढंगसे देखने लगी है। वह समझती है, मै उसको अपनाऊँगा। या तो इस समझको मुझे अपनी ओरसे तोड़ना होगा, या नहीं तो किसी तरहसे उसीके दिलमेसे यह भाव निकाल देना होगा। पहली बात मुझसे न होगी, दूसरी बात मालूम नहीं कैसे होगी। लेकिन जबतक यह न होगी, तब तक मै अपने हाथोंमे नहीं हूँ, और आप कुछ निश्चित न समझें। गरिमाको नमस्ते दे दें और विपिनको प्यार।—आपका सत्य। "

जैसे मन उसका अस्थिर है वैसे ही उसकी बात भी डिगमिगाती होती है। दो-टूक कहना नहीं जानता। इस चिट्ठीके बाद भी उसका मन डॉवाडोल है। सोचता है, बाबूजी क्या जवाब देते हैं। जैसे अपना निर्णय वह आप नहीं करना चाहता,—चाहता है दूसरे उसके

लिए निर्णय करके दे दे। मन-भाया निर्णय दूसरेसे पाकर वह झट उसे मान लेगा। हमे बिहारीकी बात ही ठीक जँचती है। वह दूसरोंकी ओट चाहता है, जिससे कामका सारा उत्तरदायित्व वह उनपर फेक दे सके, और खुद अपने सामने अपराधी बनकर खड़े होनेसे बच जाय।

बिहारी नहरसे नहाकर आया है। अब वह कट्टोके निमन्त्रणपर जायगा। सत्य मन ही मन सोच रहा है—अगर बाबूजीने लिख दिया कि 'जो चाहे करो, मेरी और गरिमाकी चिन्ता न करो, गरिमाका इसी सालमें कही और ब्याह कर दूँगा'—तो? तब तो मै कहीका नहीं रह जाऊँगा। यह ठीक नहीं होगा। लेकिन देखे तो बाबूजी क्या लिखते हैं।

सत्यको अब जमीनपर और हिसाब किताबके साथ चलनेकी अकल सूझी है। अब वह चारों ओर ठोक-बजाकर, जाँच-पड़तालके बाद, नफे-नुकसानकी सारी बातोंका लेखा लगा चुकनेपर, आगे बढना चाहता है। अब उसे हठात् यह सूझ रहा है कि इधर क्या लाभ-हानि है और उधर कितनी है, यह सब देख-भाल लेनेकी जरूरत है। इस आमद-खर्चकी हिसाबी सूक्ष्म-बुद्धिपर चढकर जब वह तोलने बैठता है तो देखता है, कट्टोकी ओर आमद नहीं, खर्च ही खर्च है। दूसरी तरफ आमदनीकी कई मदे है, खर्च लगभग है ही नही। प्रतिष्ठा बढेगी पैसा आयगा, सुख भी मिलेगा और भी बहुत कुछ। दूसरी तरफ सब कुछ खर्च होगा,—मिलेगा क्या? यह नहीं कि सत्य खर्चसे चूकता है पर अब वह खर्च लेखा देखकर करना चाहता है। आमदनी देख ले, तब दान देगा। बिना पड़ता बैठाये उत्सर्ग करनेसे वह देखता है कुछ हाथ नहीं आता।

ऊहापोहमें बहुत काल पड़े रहनेपर एक दिन जब यह कामकी

बुद्धि सत्यमें पैठी, तब देखा, वह अब तक कैसे बे-लाभ आदर्श कल्पनाके वीरान मैदानमें फिरता रहा है। यह भी देखा, बाबूजीको वह चिट्ठी लिख चुका है, और सम्भव है, तीर वापिस न आये। तो भी अभी आशा है, काम बिलकुल नहीं बिगड़ा, देखे तो बाबूजी क्या लिखते है।

इस कुर्सीपर बैठा बैठा सत्य कहाँका बहका कहाँ पहुँच गया है, नहरसे नहाया आता हुआ बिहारी इसकी बिल्कुल कल्पना न कर सकता था। वह अब कट्टोके यहाँ जा रहा है। उसने पूछा, "सत्य, चलोगे? वह खास तौरसे तुम्हें लानेको कह गई है।"

"मै नहीं जाता, तुम्हीं जाओ।"

"वह बिगडेगी मुझपर।"

"कह देना, सिरमे दर्द है।"

"तब तो वह मुझे थालीपर बैठा छोडकर तुम्हारा सिर सँभालने दौड़ी आयगी।"

"कुछ कह देना, लेकिन मै जा नही सकता।"

"क्या बात ...?"

"बात नहीं। लेकिन....यूँ ही।"

"अच्छी बात है।....सत्य, मै सोच ही रहा था, तुमसे कहूँ कि तुम न जाओ, मुझे अकेला ही जाने दो।"

"सो ही तो।...."

सत्य खुद पलट चुका है, फिर भी कोई कट्टोकी ओर खिंचे, यह उसे नही चाहिए। इसीलिए इस बेढंगे संक्षिप्त 'सो ही तो' के अलावा और कुछ न कह सका।

बिहारीने धोती फैलाई, बाल काढे, नई कमीज पहनी, धोती भी

दूसरी बारीक निकाल ली—यह सब सत्य देखता रहा। आज पहली बार सत्यको पता चला कि बिहारीके सभी कपड़े मुझसे अच्छे हैं, और बिहारी शकल सूरतमें अच्छा लगता है। बिहारीने पैरोमें स्लीपर डालकर कहा—

"चलता हूँ। तुम्हारे लिए माफी माँग लूँगा। लेकिन मै भाभीके विनाशके लिए जा रहा हूँ। आज भाभी अन्तर्द्धान कर जायेंगी, कट्टोका पुनरुद्भव होगा।—भाभी, यह बिहारी आता है आज तुम्हारा संहार करने। यह तुम्हें जगत्से लोप-विलोप-सलोप कर जायगा और तुम्हारी जगह छोड़ जायगा एक आलुलायित लोल-लोचन-कटाक्ष-संयुता, शुभ्रांबरपरिवेष्टिता, विधवविशेषणयुक्ता, जगदम्बास्वरूपा, मुक्तकेशी, सुहासिनी, गँवारिणी।" यह कहकर दोनों पैर जोड़े 'एटेन्शन' खड़ा हो गया और बोला—

"देखा, सत्य, मैं भी कैसी साहित्यिक भाषा बोलकर अभिनय कर सकता हूँ!" कौन बताये, इस अभिनयके खिलवाड़में और साहित्यिक-व्यर्थताके आडंबरमे बिहारी किस गहरी उमड़नको छिपा डालना चाहता था।

जब चलनेको मुड़ा तो आँखोंके कोनेमें आई दो नन्हीं-सी खारी बूँदोंको उसने झटपट पोंछ डाला। बिहारी, तुम धन्य हो, जो जब रोना आता है तो हँसकर दुनियाको धोखेमें डालकर बेजाने-बेदेखे आँसू पोंछनेको अवसर निकाल लेते हो! पर बिहारी, यह तुम्हारा बिहार दुनियाको भुलावेमें डाल दे, तुम्हें खुदको और इस लेखकको भुलावेमे नहीं डाल सकता। यह देखो, जीनेसे उतरकर कोनेमे तुम बहुत-से मोती आँखोंसे डाल रहे हो, यह तुम्हारा लेखक तुम्हें देख रहा है और तुम्हें पढ़ रहा है।

जाओ, कट्टोके पास जाओ। वह तुम्हारे बहाने मास्टरका इन्तजार कर रही है।

२२

हँसते हुए बिहारी कट्टोके घरमें घुस गया। सामने ही कट्टोकी अम्माँ खाटपर बैठी हैं। वह कभी इस घरमें नहीं आया है, और अम्माँ उसे नहीं जानतीं।

सीधा आकर बिहारीने कहा—अम्माँ, मुझे जानती हो?

अम्माँने देखा, एक अच्छे कपड़े पहने खूब अच्छा दिखनेवाला युवा सामने हँसता खड़ा है।

"नहीं तो बेटा!"

"अच्छा बताता हूँ,—पहले पैर छू लेने दो।" कहकर पैर छुए और उसी खाटपर अम्माँके पास बैठ गया।

"अम्माँ, मै सत्यके यहाँ हूँ। कल आया था,—दिल्लीसे।"

"दिल्लीसे?—"

"हाँ, अम्माँ।"

"दिल्लीमे तो सत्य...."

"हाँ हाँ वहींसे।"

"बड़ा अच्छा आया तू। सत्य तो..."

"अम्माँ मै रोटी खाने आया हूँ। कट्टो कल मुझे न्यौता दे आई है।"

"तू कट्टोको जान गया?"

"उसके मास्टर-साहबसे जान गया हूँ।"

"सो वह तुझे न्यौता देकर आई थी? तभी तो सबेरेसे लगी है।"

" सो बात नहीं, अम्माँ। लग तो मास्टरजीकी वजहसे रही है। उन्हें भी न्यौता था। पर वह तो आये नहीं,—आ नहीं सके। अब मै ही दोनोंके बदलेका खाऊँगा।"

" है कट्टो बडी अच्छी। उसने मेरे मनकी बात की। पहले तो तेरा हमारे ही यहाँ हक है।"

कट्टोकी अम्मॉ, कट्टोकी तारीफ इस बिहारीके सामने न करो। नहीं तो वह शुरू करेगा तो रात-दिन एक कर देगा। तुम नहीं सुन सकोगी, इसीलिए वह चुप है।

" जा भाई, जा। उधर है चौका।...कट्टो, देख तो तेरे मेहमान आये हैं।"

" कौन है?" जानती है, फिर भी पूछनेके लिए कट्टोने पूछा।

चौकेमें कदम रखते हुए बिहारीने कहा—

" दासानुदास बिहारीदास!"

" वह नही आये?"

बिहारी शैतान है, उसने पूछा, कौन?

कट्टो झेंपी—चुप।

बिहारीने यहाँ सत्यको गाली दे डालनेकी इच्छा की।

" नही...."

स्वरमे भारी निराशा थी, बोली " क्यों....?"

" यों ही कुछ काम जरूरी लग गया, आ नहीं सके। कहा है, मेरे लिए माफी माँग लेना।"

" तबीयत तो कुछ खराब नही है?"

" बिल्कुल नहीं...."

आज बहुत-बहुत-सी चीजें बनाई गई हैं। उस दिन-कैसा खाना

नहीं हैं,—गिनतीमें सात-आठ चीजें होंगी। आज पहले-ही-से दो पटड़े रक्खे हैं, पानी भरा रक्खा है, सब काम ठीक है। लेकिन आज खानेवाला बिहारी ही है,—और कोई नहीं है। मास्टरको सिर्फ एक ही दफे खिला सकी है जब कि उन्हे अपना पटड़ा खुद बिछाना पड़ा था और अपना पानी आप ओक्ष लेना पड़ा था। यह कैसा दुर्दैव है!

पर यह बिहारी उसे दुर्दैवकी चिन्तामें पड़े रहनेके लिए खाली नहीं छोड़ेगा। आते ही बात-चीतका सिलसिला छेड़ दिया है, और कट्टोके दुर्दैवकी याद भागती जा रही है।

खाते खाते बिहारीने कहा—

"भाभी,—ऊँह भाभी मै तुम्हें नहीं कहना चाहता। तुम बार बार लजाती जो हो। हमारा तुम्हारा एक और रिश्ता भी है,—बताऊँ?"

कट्टोने देखा यह 'भाभी' कहकर शुरू करनेवाला बिहारी बड़ा दुर्घट जीव है। न जाने अब कैसा मजाक करनेवाला है! वह व्यस्ततासे अपने रोटीके काममे लग गई जैसे बिहारीकी बकवासपर उसे ध्यान देनेकी फुर्सत नहीं है।

"वह फिर बताऊँगा। उसे सुननेके लिए तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी। अब तो 'कट्टो' कहना चाहता हूँ।....ऐं, यों चौको नहीं। 'कट्टो' कोई बुरी बात नही है।"

"तुम नहीं कह सकते कुछ मुझको!"

"मेरा रिश्ता सुनोगी, तो समझोगी कट्टो, मै कह सकता हूँ।"

कट्टो अब झगड़ पड़नेको तैयार है। यह निर्दय उद्धत व्यक्ति आतिथ्यका दुर्लभ उठाता है। जैसे कट्टो बिल्कुल ही बच्ची है!

"तुम कुछ नहीं कह सकते—समझे?"

बात कहींकी कहीं जा पड़ी है। अपनेको बिल्कुल खोलकर रख

देनेसे ही अब वह मोड़ी जा सकती है। नहीं तो समझो, बिहारीका आजन्म निर्वासन हो जायगा। कट्टोकी उपस्थितिमे फिर वह कभी प्रवेश न पा सकेगा। यह सब बिहारी तुरन्त समझ गया। उसने कहा—

"तुम बिहारीको नहीं समझतीं। अगर उसने तुम्हें जरा भी दुःख पहुँचाया है तो उस जैसा अभागा व्यक्ति दुनियामें कोई नहीं। वह तुमसे क्षमा चाहता है। उसकी बात सुनोगी तो उसपर बिगड़ न सकोगी। और जितनी जल्दी सुन लोगी उतना ही अच्छा होगा। विश्वास रखो, तुम्हे तनिक दुख पहुँचानेसे पहले वह——खैर. तुम क्या समझती हो, वह भूत उतारनेके लिए यहाँ आया है?"

"बिहारी बाबू, मै कुछ नहीं जानती। पर मुझसे मजाक मत करो।"

"नहीं करूँगा। पर रोकर रोनेसे हँसकर रोना अच्छा है। इसीलिए मजाक करता हूँ,—क्योंकि भीतरसे तुम्हें रुलानेकी तैयारी कर रहा हूँ।"

"मुझे तुम्हारी बात समझ नहीं आती। साफ क्यों नहीं कहते हो?"

"खानेसे निबटकर सब कहूँगा, अभी तो एक रोटी दे दो, और वह साग....वह नहीं....आलूका।"

फिर कोई कुछ नहीं बोला। खाना खाकर उठा तो पूछा, "अपनी बात अब कह सकूँगा?"

"चौकेसे निबट लूँ, तब। जाओ नहीं, अम्माँके पास बैठो।" फिर थोड़ी देर रुककर कहा "बिहारी बाबू, तुम कोई हो, बड़े भले आदमी हो। इस बारेमे मै अब कभी भूल नहीं करूँगी। कोई अपराध बन गया हो तो भूल जाना। मैं, देखो, गँवारिन हूँ।"

बिहारी ऐसी आत्म-पीड़न भरी क्षमा-आशाके सामने बिल्कुल न ठहर सका।

"अम्माँके पास बैठता हूँ, तभी जाऊँगा।"

चौकेसे बाहर होते ही 'अम्माँ अम्माँ!' धूम मचाता-हुआ बिहारी चला अम्माँके पास।

"खा लिया रे?"

"इतनी चीजे बनाईं, अम्माँ, कि खाते खाते सब नहीं खा सका। सबको चखते चखते ही पेट दूना भर गया। अब तो, अम्माँ, लेटे बगैर गुजारा न होगा,—पेट जवाब दे देगा।"

अम्माँने अपनी खाट छोड़ पीढा सँभाला, कहा—

"धूप आ गई है, खाट वहाँ जामनकी छाँहमे कर ले, और नेक सो जा।"

वह लेट गया। पेड़पर अधपकी जामने लग रही हैं। देखते देखते बिहारीके सिरपर कट्टसे एक जामन पड़ी।

"अम्माँ, तुम्हारे घरमे यों आकाशसे बम्बके गोले गिरते रहेंगे, तब तो मै यहींका हो रहूँगा। घर भी नहीं पहुँच जाऊँगा।"

"अरे, रो मत, सो जा। मर नहीं जानेका, जा, मै कहती हूँ। दिल्लीमें भी मिला है कभी ऐसे सोनेको? वहाँ तो चाहे इसके लिए तरसता ही हो!"

"जाने दो, मेरा क्या, मैं तो सोये जाता हूँ। मेरा सिर फूट गया तो दूसरा अम्माँको ही देना होगा।"

"हाँ हाँ, दे देंगे। सो तू अब।"

बिहारी जामनके तले माँके प्यारकी छाँहमे, कष्टोंके इस गँवई स्वर्ग-गृहके आँगनमे आँख मींचकर सो गया।

२३

कट्टोके तेलसे गीले हो रहे आले-वाले कमरेमें ।

" मै दिल्लीसे सत्यके लिए विवाह-प्रस्ताव लेकर आया हूँ । "

" तो—? "

" तो तुम्हें इससे कुछ मतलब नहीं ? "

" कुछ नहीं । "

" तुमने गरिमाका नाम सुना है ? "

" नहीं । "

" मै उसका भाई हूँ । "

" अच्छा ।...."

" अभी जो थोड़े ही दिन हुए सत्य गया था तो हमारे ही साथ गया था । "

" हूँ...."

" मै वहाँसे विवाहकी बात पक्की करने आया हूँ । "

" पक्की हो गई ? "

" बिल्कुल तो नहीं । लेकिन—"

" झूठ बोलते हो । "

" झूठ क्या ? "

" यही कि विवाहकी बात पक्की हो गई । तुम वृथा आये हो । विवाहकी बात पक्की नहीं कर सकोगे । "

" यह तुम कैसे कहती हो ? "

" मै कहती हूँ । "

" लेकिन तुम भूलमे हो । "

" नही हो सकती । "

"हो तो—?"

"हो नहीं सकती।"

इतना विश्वास! हाय, क्या सत्य इसके योग्य है? क्या सत्य ऐसे निश्चल विश्वासके साथ खेल करने चला है? ऐसे स्वर्गीय विश्वासको फुसलाकर फिर उसके साथ छल करेगा?

आह! इस कट्टोपर वह छल फूटेगा तो क्या हाल होगा?

बिहारी बोला, "परमात्मा करे, मैं झूठ बोल रहा हूँ। मालूम होता है, सत्य असमंजसमें है। वह शायद मेरी बहनके साथ ही शादी करनेको लाचार हो। मुझे यही दीखता है।"

"———?"

"लेकिन मालूम होता है, वह बंधनमें है। तुम उसे खोल सकती हो।"

"ओह, क्या कहते हो? मेरा बन्धन! मेरा कैसा बन्धन!! मैंने कब क्या बाँधा है जो खोल सकूँ? मै क्या बाँध रखने लायक हूँ? लेकिन यह सब तुम क्या कह रहे हो? जानते हो, यह उससे कह रहे हो जिसके लिए यह बातें कही न कही सब बराबर हैं।"

"मैंने सत्यसे पूछा है। बातें की हैं। उसने सारी बातें मुझसे खोल-कर कह दी हैं। अगर उसे अपनी बातका ख्याल न हो, तो उसकी खुशी, मैं जानता हूँ, किधर है।"

"उनकी खुशीके लिए मेरा तन ले लो। पर मुझसे ऐसी बात न करो।"

बिहारी यह किसे मनाने चला है, जो बिना शर्त, बिना कारण सुने बिना माँगे सब कुछ दे डालनेको,—सब कुछ मान लेनेको पहलेहीसे तैयार है? फिर भी तफसील देना, सफ़ाई देना, मानों काटकर फिर उसे नमकसे भरनेका प्रयत्न करना है। लेकिन बिहारी कह ही रहा है—

"सत्यका उतना दोष नहीं है। वह अपनी बात पूरी करे तो उसकी माँ मर जायगी। उस.."

कट्टो निरपेक्ष—चुप।

"उसकी क्या प्रतिष्ठा रह जायगी ? लोग क्या कहेंगे ?...."

कट्टो चुप—सुन्न।

"मेरे बाबूजीसे उसे ऊँचे लोगोंसे सम्बन्ध और पैसेकी सुविधा प्राप्त होगी। तुमसे ..?"

कट्टो सुन्न—मूर्तिवत्।

"मेरी बहिन खूब पढी है। अँग्रेजी जानती है, और बड़ी बडी बातें जानती है। तुम....?"

"कट्टो मूर्ति-सरीखी—जड़वत्।"

"मेरी बहिन उसे खूब सुख पहुँचा सकेगी। तुमसे उसे सन्तोष नहीं प्राप्त होगा। ..उसे खोल क्यों नहीं देतीं ?"

कट्टो जड़वत्—अचेत।

बिहारी कहे जा रहा है—

"सत्यकी माँ, सत्यकी बड़ाई, सुख, प्रतिष्ठा, सन्तोष और सत्यकी भलाई...."

पर देखो देखो, कट्टो अचेत मूर्छित होकर गिरी जा रही है!

बिहारीने झट-से सँभाल लिया। सत्यपर उसे बड़ा गुस्सा आ रहा है। सत्य यहाँ होता तो उसका सिर पकड़कर इस कट्टोके पैरोंके पास धूलमें इतना घिसता कि बाल सारे उड़ जाते! हाय कम्बख्त स्वर्गके इस अछूते पारिजातकी गन्धको जूठा करके छोड़े जा रहा है!

कट्टोको खाटपर लिटा दिया। कुछ उपचारसे होश आया। कट्टोने जागकर देखा, कि बिहारी शुश्रूषामें लगा है।

"बिहारी बाबू, आप जाओ। उनसे कह देना कि अपने कामोंमें कट्टोकी गिनती न करे। मेरे पीछे उन्हें थोड़ी भी चिन्ता भुगतनी पड़ी तो मै अपनेको क्षमा न कर सकूँगी। मै क्या रही, जो मेरे पीछे उन्होंने दुख भुगता! न हो, तो मै ही उनसे कहूँगी। कहूँगी, अपनी कट्टोपर इतना एहसानका बोझ न डालो, मुझसे उठाया न जायगा, मै उसके नीचे सदा दुखी रहूँगी। इससे मेरी गिनती छोड़ दो। तुम्हारे सुखसे ज्यादे मुझे और कुछ नही चाहिए। उसीको नष्ट कर दूँगी तो कहींकी न रहूँगी।... बिहारी बाबू, आप जाओ। बड़ा कष्ट पहुँचाया आपको। पर कट्टो बड़ी सुखी है। बहुत दिनोंके बाद आज मालूम होता है वह कुछ दे सकेगी जो उनकी खुशीकी राह खोल दे। बडा सौभाग्य है कि आखिर मै उनके किसी काम आऊँगी। उनसे कहना, कट्टोपर विश्वास रक्खें, वह उनकी बड़ी ऋणी है,—नहीं, मै ही कहूँगी।"

बिहारीने कहा—

"दुनियामें सभी सत्य नही हैं, बिहारी भी हैं। तुम्हारी तरह पुरुष भी हैं जो बिना लिये दे सकते हैं।"

"नहीं, सभी उन जैसे नहीं हो सकते। वह जो करेंगे, ठीक करेंगे। और ठीक करनेमे अपनेको बचायेंगे नहीं। देने लेनेका कुछ सवाल नहीं है।"

"लेकिन।.."

"नहीं, तुम उन्हें नहीं समझ सकते।"

इस तरह कटकर बिहारी चुप खड़ा रह गया। इस लडकीका विश्वास, जो अब गडकर हिलनेका नाम नही लेता,—चाहे प्रलय आ जाय, हिमालय ढह पड़े; जो अटल-अडिग खड़ा रहेगा।—हो जो होना हो। इस विश्वासको देखकर वह स्तंभित रह गया। कुछ देर चुप रहकर बोला—

"परमात्मासे मै बात नहीं करता। करूँगा तो उसे भी 'तुम' कहूँगा। क्या तुम्हे अब 'कट्टो' भी नहीं कह सकता ?"

"अब जो चाहे सो कहो।..'कट्टो' ही ठीक है।" फिर हिचक कर कहा, "नहीं ठहरो, पहले उनसे मिलना होगा।"

"कुछ कहो, अब मिलूँगा तो—'कट्टो' ही कहूँगा, और तुम नाराज न हो सकोगी। बिहारीसे नाराज होगी तो वह मना छोड़ेगा। अब जाता हूँ।"

"जाओ, पर उनसे कुछ न कहना। मै ही आऊँगी।"

बिहारी विस्मय और विक्षोभ लेकर चला गया।

२८

सत्यको बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए बिहारीको नहीं जाने देता। बिहारीको भी बाबूजीके पत्रकी प्रतीक्षा है, इसलिए वह ठहर रहा है।

एक ही डाकसे दोनों पत्र आये। सत्यने अपनी डाकमेसे बिहारीका पत्र उसे निकालकर दिया और उसकी तरफ़ शंकासे देखा।

सत्यने अपना पत्र भी उतावले काँपते मनसे अकेलेमें खोला। पढा—

"बेटा सत्य, तुम्हारा खत मिला। तुम समझदार हो, अपने लिए आप तय कर सकते हो। अगर तुम उस लडकीका भला चाहते हो, तो मै कैसे भी मना नहीं कर सकता। गरिमाके लिए दूसरा वर ढूँढनेमें मुझे बहुत दिक्कत नहीं होगी,—उस ओरसे निश्चिन्त रहो। लेकिन होगी यह एक बात दुःखकी। क्या मै बताऊँ कि इस संबंधपर ज्यादे जोर मै तुम्हारे ही कारण देता रहा हूँ। तुम्हें न जाने क्यो, बेटा मानने लगा हूँ। वैसी ही मुहब्बत करता हूँ। मेरा कुछ नहीं, पर ऐसा होगा

तो तुम्हें बड़ा नुकसान होगा। उसीका ख्याल है। तुमपर तो अब भी मै दया करना चाहता हूँ,—मुहब्बत करना चाहता हूँ। तुम उधर फँस बैठे हो तो जाने दो। खुशी है कि इसमे मेरा कसूर नहीं, अपने अलाभके लिए अपनेको ही धन्यवाद दे सकोगे।

"सत्य, मैंने उमर यों ही न खोई। कुछ दुनिया भी जानी है। दुनिया मोमकी चीज नहीं, और न किताब ही है जिसे पढकर खतम कर सकते हो। यहाँ जगह जगह टक्कर खाना पड़ता है और समझौता करना पड़ता है। जीवन दायित्वका खेल है, पग-पगपर समझौता है।

"जो मन नहीं मार सकता, जिसे झुकना और छोटा बनना नहीं आता,—जिसे दूसरोंकी सुविधा और दूसरेको निभानेकी दृष्टिसे झुकना और राह छोड़ना नहीं आता,—वह जिन्दगीमे कभी कुछ नही कमा पाता।—जिन्दगीका सन्तोष भी नहीं। सत्य तुम्हें यह सीखनेकी आवश्यकता है। कोई यहाँ नितान्त स्वतन्त्र, एकाकी नहीं है,—जो ऐसा समझता है वह दायित्वसे डरता है और कापुरुष है। सब कुछ उत्तरदायित्वोंसे बँधे हुए हैं। उन्हें जजाल समझो, कर्तव्य समझो,—लेकिन उनमेंसे भाग निकल छूटना न चाहो! क्योंकि भाग छूटकर देखोगे कि तुमने जीवनको रेगिस्तान बना लिया है।

"सत्य, इस वक्त तुम झमेलेमें हो। मालूम होता है कि प्रेमको जीवनमे ठीक स्थान अभी नहीं दे पाये हो,—इसीसे दिक्कत उठा रहे हो। क्या तुम उस लडकीसे प्रेम करते हो?.. मै ऐसा ही समझता हूँ। प्रेम जो कब्जा चाहता है,—वैसे प्रेमकी छूट समाजके लिए अनिष्टकर है। प्रेममें यदि इस आधिपत्यकी आकांक्षा है—यह कि वह मेरी है, मेरी ही है, मेरी हो जाय,—तो इस प्रेममे, विश्वास रक्खो, गँदलापन है। स्वच्छ और वास्तव प्रेम इस प्रकारकी आधिपत्य-आकांक्षासे कुछ

सम्बन्ध नहीं रखता है। वह ' उस ' की प्रसन्नता, उसका सुख, उसके सन्तोषकी ओर सचेष्ट रहता है,—उसपर कब्जा कर लेना नहीं चाहता।

" अब विवाह क्या है? विवाह बिल्कुल एक सामाजिक समस्या है, सामाजिक तत्त्व है। तुम भूलते हो, अगर तुम उसे और कुछ समझो। उन कुछ उत्तरदायित्वोंसे, जो जीवनके साथ बँधे है, उऋण होनेके लिए यह विवाहका विधान है। दुनियामें क्या करना है, उसकी दृष्टिसे लाभ-पूर्ण क्या होगा, क्या नहीं, कुटुम्बियोंकी प्रसन्नता किस ओर है और अपना स्वार्थ किस ओर है,—ये सभी बातें विवाहके प्रश्नमें संश्लिष्ट हैं। ' स्वार्थ ' शब्दसे घबड़ाओ नहीं। देखोगे तो परमार्थ शुद्ध स्वार्थ है। लेकिन मै कहता हूँ कि शब्दसे मत डरो, तथा देखो और वास्तविकताको पहचानो।

" तुम प्रसन्न होगे। जो करो उसमें मेरा आशीर्वाद समझो। मै तुम्हारा सदा भला चाहता हूँ। तुम्हारा विवाह कब होगा, लिखना। गरिमाके विवाहमें वैसे आओगे तो जरूर? अब मै उसे कब तक टालूँ?—इस सालमे कर ही दूँगा। गरिमा तुम्हें नमस्ते कहती है, विपिन नमस्कार।

" मेरे उपदेशपर नाराज न होना। चाहोगे तो यह तुम्हें बहुत मदद दे सकेगा। मैने समझा, तुम ऐसी खरी और कठिन बातें सुननेकी जरूरतमे हो।—इसी लिए लिख दीं।

तुम्हारा—भगवद्दयाल "

बिहारीको यह पत्र लिखा गया था।

" बिहारी, जानते हो, तुम्हारे पत्रके साथ सत्यका भी एक खत मिला था। तुमने लिखा था वह सँभल गया है, लेकिन वह सँभलनेके

मार्गपर आकर अभी बिदक रहा है। पर मै साफ देख रहा हूँ, आयेगा वह उसी राहपर। तुम उससे कुछ मत कहो। एक बार इधरसे आशाका तार टूटा कि वह बेसहारा हो जायगा। तब उसे मेरे पास आये ही सरेगा। नही आयेगा तो वह भी ठीक होगा। तब उसे कठिन, ठोस, बे मुरव्वत दुनियाके सामने पड जाना होगा। और यह बुरी बात न होगी। मै जो समझाकर कहता हूँ, दुनियासे वही थप्पड़ खाकर सीखेगा। बिहारी, मै देखता हूँ, वह तेरे जैसा बिहारी नही है। वह मेरे जैसा संभ्रान्त, सभ्य, पैसे और प्रतिष्ठासे सुभीतेवाला आदमी नहीं बनेगा तो मुश्किलम ही रहेगा। झोपड़ीमे रहकर या आवारा रहकर जीवनकी पूरी तुष्टि पा लेना उसका काम नहीं है।

"तुम उसपर बिल्कुल जोर न दो,—आ जाओ। अगर इस विवाहके टलनेका मुझे दुःख होगा तो सत्यके ही खातिर,—गरिमाके कारण नहीं।

"बाकी यहाँ सब ठीक है।

तुम्हारा—बाबू"

२५

सत्यको इस खतकी एक एक बात मान्य होने लगी। कट्टोको वह प्यार करता था,—यह वह अब मान लेनेको तैयार है। इस प्रेमके ही कारण वह उसकी रक्षा करना चाहता था और अपनी बना लेना चाहता था। जहाँ यह 'अपनी' बना लेनेकी कामना है,—वह प्रेम उपादेय नहीं है। अब इसमे सत्यको सशय नही रहा।

फिर दूसरी भी तो बात है। प्रेम जीवनको बहलानेकी वस्तु तो बन सकती है, लेकिन जीवन उसके लिए स्वाहा नहीं किया जा सकता।

जीवन तो दायित्व हैं, और विवाह वास्तवमें उसकी पूर्णताकी राह,—उसकी शर्त। इस दायित्वसे एक ख्याल—एक भावनामे बहकर कैसे छुट्टी पाई जा सकती है ? प्रेमको इस दायित्व-पूर्ण विवाहकी बातमे कैसे दखल देने दिया जाय ? जीवन प्रेमसे ज्यादे महत्त्वकी,—ज्यादे ऊँची और पवित्र चीज है। प्रेम,—जो अन्तमे केवल एक आवेश—एक भाव है, उसपर जीवन कैसे निछावर कर दिया जाय ? वकील साहबकी यह बात उसे स्पष्ट अमिट सत्यकी नाईं लग रही है। मानों वह जिस आधारभूत जीवन-सिद्धान्तपर पहुँचनेका अबतक प्रयत्न कर रहा था,—वह जगह जहाँ पैर टिके और जहाँ पक्की नींव बाँधकर जीवन खड़ा किया जा सके,—वह मानों उसे मिल गया। अब उसके बारेमे भूल नहीं करेगा। अब उसे साफ दीख रहा है—अबतक जिन बातोंको ठीक समझकर वह अपनेसे चिपटता था, वह कोरे शब्द थे,—कोरे भाव। उनपर दुनिया नहीं टिक रही है। जो वकील साहबने लिखा,—"वह है जिसको केन्द्र मानकर दुनिया चल रही है, और व्यक्तिको चलना चाहिए। जीवन एक दायित्व है,"—कैसी सुन्दर बात है, कैसी अच्छी लगती है! और वह दायित्व है किसके प्रति ?—संसारके प्रति, संसारकी उन्नतिके प्रति!

बिहारी होता तो कहता, '—अपने प्रति, अपने अन्तःकरणके प्रति।" विनोदशील बिहारी और विचारशील सत्यमे यही अन्तर है।

लेकिन सत्यके लिए पत्रके उत्तर-पैराग्राफ़ तो ठीक हैं, पहला गड़बड़ है। यह बात उसके अहंभावको चुटकियाँ ले रही है कि यह विवाह उलट गया तो उसकी ही मुश्किल है, गरिमाकी नहीं—यह कि उसी-पर दयाकर वह अबतक इस सम्बन्धपर जोर दे रहे थे। लेकिन सोचता है तो बात ठीक ही है। गरिमाको, जब चाहो तब, उससे हर हालतमें

अच्छा वर प्राप्त हो सकता है, और उसके बिना वकील साहबके जीवनमें कोई अभाव, कोई अपूर्णता नहीं पैदा होती। जब कि इधर तो सत्यके लिए आगे कुछ दीखनेका मार्ग ही बन्द हो जाता है।

पर, बिल्कुल निराश हो बैठनेकी अभी बात नहीं है।

वह कमरेमे आया। बिहारी यही बैठा है। बाबूजीका पत्र पाकर सत्यके प्रति उसका आदर बढ गया है। उस पत्रसे बिहारीने देखा कि सत्य अब भी अपनेसे झगड़ रहा है, हार मान नहीं बैठा। और अपने आपसे बराबर लड़ते रहना ही तो जीवनमें एक कीमती चीज है!

लेकिन बिहारीको नहीं मालूम कि सत्य हारको हार नहीं मान रहा, वह लड़ाईसे विमुख होकर इस कीमती लड़ाईको बिल्कुल व्यर्थ चीज ठहराकर स्वीकार कर रहा है।

बिहारीने कहा—आओ भाई सत्य, मेरा धन्यवाद लो।

"धन्यवाद कैसा?"

"पता चला है कि मुझसे कहनेके बाद भी तुम कट्टोके बारेमें बिल्कुल लापर्वाह नहीं बन चुके थे।"

"हाँ, बाबूजीको कुछ ऐसा ही लिखा था। लेकिन...."

"लेकिन?...."

"लेकिन जीवन एक दायित्व है..."

"फिर?"

"और ..और प्रेम एक अस्थायी भावना। जीवनके स्थायित्वको अस्थायी भावनाओंका आधार नहीं काम देगा।"

"सीधी सादी हिन्दी भी क्या काम नहीं देगी? भई, ऐसे तो बात करो जो यह बिहारी समझ जाय! जीवनका स्थायित्व कैसा?—क्या

जीवन स्थायी चीज है ? यानी संसारमे बिताये जानेवाले ये पचास-साठ-सौ साल ?—स्थायित्वकी परिभाषाकी हद क्या सौके अंक तक ही है?"

"गलत मत समझो। जीवन स्थायी है, उसे एक दिशाकी ओर ही बढते रहना चाहिए,—यही उसका स्थायित्व है।"

"....और यही आपका पाण्डित्य है!"

"बिहारी, तुम यही नहीं समझते, इसमे मेरा क्या दोष ? अपनेको टटोलता हूँ, तो देखता हूँ कि कट्टोकी ओर मै उस भावसे खिच रहा हूँ जिसे प्यार कहा जाता है। यह प्रेम एक भाव है, और भाव पैदा होने और मिटनेके लिए होता है। अर्थात् यह क्षणस्थायी है। अब विवाह एक टिकनेवाला सत्य है, दायित्वका अश है। प्रेमको उसमे दखल देने देना ठीक नहीं होगा।"

"और सब कामोंमें बहुत ज्यादे अकलको भी दखल देने देना ठीक नहीं होगा।—तो आपने इतने दिनोंमें यह उधेड़-बुन की है? और आपको मालूम है, इन दिनों आपकी कट्टो क्या करती रही है? वह आपको ध्याती रही है और आपको मन ही मन परमात्मा बनाती रही है।"

"लेकिन मै क्या करूँ ? प्रेममें जहाँ कब्जेकी इच्छा है वहाँ मैल भी है। क्या इस मैलका काबू स्वीकार करूँ ?"

"नहीं जी, सो क्यों? विशुद्ध विशुद्धताको ही स्वीकार करो। वह क्या है, जानूँ तो?"

जिस बातको मानकर दुनिया खड़ी है, जिस दुनियाकी कीलीको हम और तुम नहीं बदल सकते, उसको हिलानेकी कोशिश करनेके बजाय हम मजबूत करनेमें सचेष्ट हों तो ज्यादे कार्यकर हो सकते हैं। और वह आधार-भूत तत्त्वकी बात यह है कि कोई नितांत स्वतन्त्र नहीं है, सब ही उत्तरदायित्वोंमें बँधे हुए हैं। उन्हींमें उनका मोक्ष और कृतार्थता है।

" बहुत ठीक। आपके जीवनका एक उत्तरदायित्व है गरिमाका पति होना। बहुत सुन्दर—और आगे ?"

" बिहारी, तुमने अभी दुनियापर हँसना ही सीखा है। इसमे कुछ नहीं लगता। पर उसे समझना मुश्किल है। सो तुम्हे बाकी है।"

" ओहो, एक ही क्षणमें आप दुनियाको समझ बैठे ! ऐसी दुनियाकी समझ आपको मुबारिक और उस समझके बाद रोना मुबारिक। मुझे तो परमात्मा मेरा हँसना ही दिये रक्खे।"

" बिहारी तुम अभी नहीं समझोगे। जाने दो।"

" ठीक है, आप समझ गये। ऐसे विशाल गहन तत्त्वकी बात बिहारीके इस हल्के-से हँसोड़ दिमागमे नही आयेगी। लेकिन अब बताइए, क्या ठीक रहता है ? क्योंकि दुर्भाग्य कहो या सौभाग्य,—या दोनों ही, यह आपकी दायित्वपरिणीता गरिमाका भाई है। और आपके निर्णयको सुनकर घर पहुँचानेका कर्तव्य उसपर आ पडा है।"

" बिहारी, बाबूजीकी जो इच्छा है, माँ जिसके लिए कबसे जोर दे रही हैं, जिसमें तुम भी और गरिमा भी शायद हृदयसे सहमत हैं,—उसे मै नहीं टालूँगा। बड़ोंकी बात मानूँगा,—उनका आशीर्वाद खो न सकूँगा।"

" शुभमस्तु।....लेकिन बिहारी श्रीसत्यधनजीको एक सूचना देना चाहता है। कट्टो उनसे मिलने आया चाहती है।"

खिड़कीमेंसे कट्टोको आते बिहारीने देख लिया है।

" एक निवेदन और है," बिहारीने कहना जारी रक्खा " कट्टोकी संस्कृत-शिक्षा अगाध नही है। उसने अभी विश्वकी फिलासफी भी नही पढ़ी है। इससे उसके सामने श्री सत्यधनजी संस्कृत फिलासफी ज्यादे न बखेरे। कही वह समझ न सके और उन्हें परमात्मासे भी ऊँचा

मानने लग जाय। कट्टोकी जरा भी पर्वाह करते होगे, तो विश्वास है सत्यजी मेरा अनुरोध टालेंगे नही।"

तभी कट्टो दरवाजेमे आई।

२६

कट्टो दरवाजेमें आई,—बिहारी चलने लगा।

"नहीं, जाओ नहीं।" कहकर कट्टो सत्यसे कुछ हाथके फासलेपर खड़ी हो गई।

सत्यपर उसकी आँखें पड़ रही हैं। उनमें कैसा भाव है। जैसे एक अकिंचन अनुग्रहीता किंकरी उनकी पदधूलिकी भीख लेने आई है,—बस और कुछ नहीं।

"तुमने इनका परिचय मुझे क्यों नहीं बतलाया?" कट्टोने सत्यसे कहा—

"बताया तो ..."

कट्टोने शरारत-भरी मीठी-सी हलकी-सी एक हँसी हँसकर कहा—

"किस कामके लिए आये, सो तो...."

इस समय सत्यको फिलासफीके टेकनकी बहुत सख्त जरूरत है, क्योंकि मन गिरता जा रहा है और उसे इसी टेकनपर टिकाकर मजबूत रखना होगा। अच्छी तरह इस तत्त्वज्ञानकी टेकनको जमा जमू कर उसने कहा—

"वह बिहारीने खुद ही कहनेका जिम्मा ले लिया था।"

कट्टोको मास्टरका यह पक्कापन बड़ा अच्छा लग रहा है।—

"सो इन्होंने ही तो आकर सब बताया।"

अब सब चुप।

फिर कुछ देरसे कट्टोने ही कहा—

" तो हमारी जीजीको कब लाओगे ? "

इन कल्पनातीत बात,—इस अनोखे दावके आगे तत्त्वज्ञताकी सुसन्नद्ध शब्द-सेनाके रहते भी सत्य सिट्टी भूल गये। चुप रहे, कुछ उत्तर न बन पड़ा।

" बोलो, कब आयेगी हमारी जीजी ? "

धीरे धीरे अपने पक्षका भान इन्हे हुआ। इच्छा-शक्तिको कडा किया, हठात् हँसकर बोले—तुम चाहती हो, मै जीजी लाऊँ ?

" वाह, नही चाहती ? जो तुम चाहते हो सब चाहती हूँ, मेरा परमात्मा जानता है। "

इस अबोध प्रतिपक्षीके आगे जोर लगाकर तैयारी की हुई सत्यकी सेना कुछ काम नहीं दे सकेगी। सत्य फिर जैसे खो गये, जैसे वह आधार मनके नीचेसे खिसकने लगा और मन धँसकने लगा।

" इन बिहारी बाबूने मुझसे कहा था कि तुम्हें मेरी जरूरत पड़ गई है। मैं सोच सकती थी, कभी मेरी भी जरूरत पड जायगी! अब हाजिर हो गई हूँ। बोलो, सामने खड़ी हूँ। मै तो तुम्हारी ही हूँ। मुझसे बोलते, मुझसे माँगते डरते हो ? जैसे परायेसे कुछ माँग रहे हो ? छिः—सो नहीं। तुम्हारे काम नहीं आई, तो हुई ही क्या ? "

बोले जाओ कट्टो, मास्टरजी तो अचरजसे तुम्हारी सब बात सुन रहे है। जुबान उनकी जकड़ गई है और डरके मारे हिल नहीं सकती।

" जो कुछ भी तुम चाहते हो सबमें कट्टोकी खूब राय है। कट्टो भी उसे खूब चाहती है। उसका पूरा पूरा विश्वास रक्खो। तुम्हारी खुशीमें उसकी खुशी है। तुम्हारे सोचमे उसकी मौत है। अपने कामोंमे कट्टोकी गिनती मत करो,—वह गिनने लायक नहीं है। उसकी खुशी तुममें शामिल है। अब तुम ब्याह करना चाहते हो, कट्टो तुम्हारी सबसे

पहले तुम्हारा ब्याह चाहती है। ओहो, वह कितना खुश होगी, खूब खूब खुश होगी। तुम कट्टोको क्या समझते हो?—वह तुम्हारी नाखुशी लेकर जिन्दा रह सकेगी?—और क्या समझते हो कि वह तुम्हें समझती ही नहीं? तुम्हे खूब समझती है। तुम जो करोगे, अच्छा करोगे, और कट्टो उस अच्छेमें खूब आनन्द मनायेगी। तुम तो कट्टोके मालिक हो,—फिर उसकी फिकर क्यों करते हो?—"

सत्य सफेद-फक हुए खड़े हैं। बिहारी एक कोनेमें मुँह फिराकर न जाने क्या देखता खड़ा हो गया है।

"अरे, ऐसे क्यों खड़े हो? क्या गुम्मा-सुम्....बिहारी बाबू।" अन्तिम शब्दोंके निकलते निकलते निगाह बिहारीकी ओर फिरी, "अरे, यह बिहारी बाबूको भी क्या हो गया है?...."

बिहारीको क्या हो गया हैं, कुछ नहीं। वह तो हँसता हुआ बढ़ा आ रहा हैं। आँखे लाल हैं, गाल धोखा देकर भेदकी बात कहनेको हो रहे हैं,—फिर भी बिहारी हँसता बढा आ रहा है। सामने आकर बोला—

"यह हाजिर हैं, बिहारी बाबू।"

"तुम्हे कौन-सा भूत चढ़ता हैं, बिहारी बाबू?"

"मुझे तो एक ही भूत चढता है,—हँसीका। वह जब कामसे कहीं जाता है, तो मुझे मुँह छिपाकर खड़ा हो जाना पड़ता हैं।"

"देखो, यह मुझसे बोलते नहीं। इनपर क्या फिर भूत चढ़ गया हैं, बिहारी बाबू?"

"चढा भी होगा तो उतर जायगा। अब वह नहीं चढा करेगा। इन्होंने एक देवीकी आराधना की हैं। तुम नहीं जानतीं उसे। उसका

नाम है फिलासफी। वह ऐसे ऐसे भूतोंको पास नहीं फटकने देती। मेरेवाला भी उस देवीसे बहुत घबड़ाता है।"

"इनको बुलाओ तो...."

"चेष्टा करता हूँ। पर सम्भव है इनके मुँहसे अभी वह देवी ही बोल उठे। तब तो उसकी बात शायद है कि आपकी समझमें न आये। पर आप घबड़ायें नहीं,—समझनेके लिए हैरान न हों, क्योंकि वे बातें बिरलोंहीकी समझमें आती हैं।"

इतना कहकर बिहारीने सत्यके कानमें गुनगुना दिया, गड़बड़ करोगे तो गरिमा गई, कट्टो चढी! तब तो गजब हो जायगा! चेत उठो।"

सत्य एकदम झल्ला पड़े—बिहारी, चले जाओ तुम यहाँसे!

बिहारीने फरियादके ढंगसे कट्टोसे कहा—

"भूत तो भागा, पर साथ ही मुझे भागना पड़ता है!—यह क्या न्याय है?"

"बिहारी बाबूको रहने दो न।" कट्टोने मानो निर्णय देते हुए कहा, "उन्हें क्यों भेजते हो?"

सत्य अब फिर चुप।

कट्टोने कहा, "बोलो। बोलोगे नहीं?"

चुप।

"बोलोगे नहीं, तो मै जाऊँ?"

"— —"

"जाऊँ?"

"जाओ।"

तब एक बात कहती हूँ। एक,— बस एक। उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा। करोगे?"

"कहो।"

"करोगे?—कहती हूँ, तुम्हारा उसमे कुछ नहीं जायगा। कहो,—करोगे।"

"करूँगा।"

"जीजी आयेगी तो पहले मेरे यहाँ खायेंगी। मै पहले खिलाऊँगी,—चाहे कुछ हो, मै खिलाऊँगी। न होगा तो तुम्हारे घर आकर मै बनाऊँगी। पर पहली रोटी वे मेरे हाथकी खायेंगीं। इतनी अरदास मेरी कबूल रखनी होगी। कहो, हाँ।"

सत्यने अपना सारा बल कण्ठमें खींचकर कहा—'हाँ।'

इस 'हाँ' को सुनकर कट्टो पत्थरकी मूर्ति-से खड़े सत्यके पैरोमें जाकर लोट गई।

एक बार और लोटी थी। तब शाम थी, अब दोपहर है। तब स्वर्गके द्वार खोले गये थे आमन्त्रणपूर्वक, अब आमन्त्रित कट्टोके मुँहपर ही ढॉप दिये गये हैं। खुले थे तब भी वह इन पैरोंमे लोटी थी, बन्द कर दिये गये हैं तब भी वह इनमें ही पड़ी है। उसकी यह कैसी समझ है!

कुछ देर सन्नाटेके बाद आवाज आई—जाऊँ?

सत्यने भरी आवाजसे कहा—जाओ।

"जाऊँ?"

"जाओ।"

तब वह कट्टो उठी। आँसू ढरकना बन्द हो गया है, मेहके बाद अब चॉदनी मानों मुँहपर थिरकनेको हो रही है,—यह अब ताजी धुली-हुई कट्टोकी किरणकौमुदी मानों हँस देगी। बोली—बिहारी बाबू, घरतक साथ चलोगे? काम है।

बिहारी बाबू मानों जग उठे, फिर भी अधजगेसे कट्टोके पीछे पीछे चल दिये।

२७

वही कमरा है, वही आला है, वही कट्टो है। फिर भी वही नही है। उसी कटोरेमे वैसा ही सफेद दूध है,—पर जैसे जादूका फूँक फेर दिया गया है, और वह दूध नहीं हालाहल है। इस कमरेकी स्मृति, यह सामनेका आला जिसमे उस दिनका छ पैसेका दर्पण रक्खा है और वह कंघा और टिकुलीकी डिबिया,—मानो सब उसको चिढाते हुए उससे कह रहे हैं, 'तुमने हमे धोखा देकर रक्खा है, हम पराये हैं। पराये हैं!' स्मृतियाँ उमड़ उमड कर कह रही हैं 'तुम स्वप्नकालमे हमसे खूब खेली। अब तुम्हें जगा दिया है, अब हम जाती हैं। जाती हैं,—कहीं और।' वह सब अँगूठा दिखा दिखा कर मानो कह रही हैं, 'कहीं और! कहीं और!!' जो अभी बीते क्षण तक सत्य था, वह सब कुछ इन स्मृतियोंका साथ देकर उसे बिरा रहा है, जा रहा है, कही और कहीं और!!!'

ठठोली करते हुए, पराये दिखते हुए, इस कमरेमें ही बिहारी खडा है।

कट्टोने अब बिहारीको देख पाया,—ऐसे विस्मित-चकित भावसे देखा मानों पूछना चाहती है, 'तुम कौन हो, क्यों आये?—क्या चाहते हो?' बिहारीने निस्संकोच 'कट्टो' का हाथ अपने हाथोमें लेकर कहा, "मै गरिमाका भाई हूँ। समझी कौन हूँ? अब 'कट्टो' के सिवाय कुछ नहीं कहूँगा।"

'जो चाहे कहो बिहारी बाबू, तुम उनके मित्र हो, और मेरे लिए सब कुछ हो।"

बिहारीने बड़ी तीक्ष्ण जिज्ञासा, बड़ी आशंका, बड़ी आकांक्षासे पूछा— "कट्टो अब क्या....?"

"पहले एक थे, अब दो हो गये हैं। दोकी सेवा करूँगी। मेरा तो काम और बढ गया है।"

बिहारी कहना चाहता है, सत्य इस योग्य नहीं है। पर सामने खडी इस भक्तिनके आगे मूर्तिपर हाथ रखते डर लगता है। कट्टोकी खातिर वह सत्यको अब कुछ न कहेगा।

"सत्य अब तुम्हारी सेवा नहीं लेगा, कट्टो। न तुम्हारी जीजी यह होने देगी!"

"न सही, मेरा काम मेरा काम है। तनसे नहीं तो मनसे तो करूँगी ही।"

इसी क्षण भीतर कुछ उठा और बिहारीके शरीर और आत्माको एक रंगमे रंग गया। परमात्माने हम दोनोंको साथ ला दिया है,—अब दोनों धाराएँ एक होकर बहेंगी, उनका कुछ और काम न होगा। अपनी संयुक्त-जीवन-धारापर किनारे किनारे तीर्थ स्थापित करें और यह पुण्य-गंगाकी तरह लोकमें बहती निकलती चली जाय,—कल्याण सरसाती हुई, खेतीको हरियाती हुई, लोगोंको नहलाती हुई, लहराती हुई अनन्त सागरमे विलीन हो जाय। बिहारी एक क्षण इस लोकोत्तर भावनाके प्रबल प्रस्फुटनमें आत्मसात् हो गया। फिर बोला—

"कट्टो, एक साक्षात्कार हुआ है।...."

यहाँ उनका कण्ठ काँप गया और सुर लरज आया।

"बिहारी बाबू!....

वह भी इतना कहकर चुप हो गई। रुककर फिर कहा—

"यह न समझो, मै तुम्हें गलत समझती हूँ। तुममें तो कुछ सम-

झनेको है ही नहीं। जो बाहर है, वही भीतर भी है। भीतर वही विनोदका झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसूका और आधा हँसीका है, और जिसमेंसे हर बात आर-पार दिखाई देती है। लेकिन अनहोनी घट नही सकती, होनी टल नहीं सकती। जो हो गया, हो गया। उसे मिटाना अब बससे बाहरकी बात है। जो चढ चुका,—उसे चरणोमे वापिस खींच नहीं ला सकती। वह अब मेरा नही रह गया। लेकिन...."

"लेकिन....?" बडी व्यग्र उत्कंठासे बिहारीने कहा—

"लेकिन एक बात है। सोती हूँ तो आकाश-गंगाको ऊपर खिल-खिलाते देखती हूँ। वह हमपर नीचेको देखती रहती है। हमारी जगतकी यह गंगा भी ऐसे ही ऊपरको देख देखकर बहती है और हँसती रहती हैं। लगता है कि ये दोनों गंगाएँ एक दूसरेको देख देख कर ही जीती हैं। इस सारे अनन्त शून्य,—किसी गणनामे न आ सकनेवाले आकाशको भेदकर इनकी हँसी एक दूसरेको परस्पर कुशल-क्षेम दे आती है। दोनोंका मन एक है, नियम एक है। मालूम होता है, दोनों आपसके समझौतेसे इतनी दूर जा पड़ी हैं कि दोनों एक ही उद्देश्यको दो जगह पूरा करे। दूर हैं, फिर भी पास हैं। अलग हैं, फिर भी एक हैं। बिहारी बाबू... बिहारी बाबू, क्या यह नहीं हो सकता?—क्या हम भी दो ऐसे नहीं हो सकते? दूर, फिर भी बिल्कुल पास। अलग, फिर भी अभिन्न। दो, फिर भी एक। एक ही उद्देश, एक ही जीवन-लक्ष्यमें, पिरोये हुए?"

बिहारीने कहा—कट्टो!...

कट्टोने कहा, "आओ, मेरे साथ बँधते हो? मैने तुम्हें देखा, तुमने मुझे देखा। तुमने मेरी भाषा भी देखी, भाव तो देखे ही। 'वह' नहीं

जानते मै कितना पढ गई, कोई भी नहीं जानता, मै भी नहीं जानती थी। अभी जानी हूँ, जब तुम जाने हो। इतनी हिन्दी जाननेके बाद कुछ करोगे तो तुम्हें भी मदद पहुँचा सकूँगी। इतनी भाषा, अम्मॉके बाद, मुझे रोटी भी दे ही देगी। इस तरह, पढने-लिखनेके लिहाजसे भी तुम्हें मुझपर शर्म करनेकी जरूरत नही। बोलो, बॅधते हो?"

"भाडमें फेंको पढनेको।....बँधता हूँ।"

"बिहारी बाबू, बड़ा कठिन यज्ञ सम्पन्न करनेके लिए बॅधते हैं हम। सोच लो तुम। बहुत लम्बा जीवन आगे पड़ा है...।"

"तुम मुझसे छोटी हो। तुम्हारे लिए व्रत और कठिन...."

"मुझपर तो आ पडा है, पर तुम...."

"कट्टो, बँधता हूँ....।"

"उस यज्ञके लिए सबसे सुन्दर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य'। अर्थ है, "आत्म-आहुति। बँधते हो?"

"बँधता हूँ।"

कट्टोका बायाँ हाथ बढ़ा, बिहारीका दायाँ। दोनो एकमें गुँथ गये।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण, दो तन। कोई हमे जुदा नहीं कर सकेगा।"—कट्टोने कहा।

"हम दोनों वैधव्य-यज्ञकी प्रतिज्ञामें एक दूसरेका हाथ लेकर आजन्म बँधते हैं। हम एक होंगे,—एक प्राण दो तन। कोई हमे जुदा नहीं कर सकेगा।" बिहारीने दोहरा दिया।

कट्टोने कहा—

"आज मेरा विवाह पूर्ण हुआ। वैधव्य सार्थक हुआ।"

बिहारीने कहा—

" यह महाशून्य साची हो, हम कट्टो-बिहारी सदा एक दूसरेके प्रति कट्टो-बिहारी रहेगे, न कम न ज्यादे।"

फिर बिहारीने कहा, " कट्टो, कट्टो, जो दूँगा, लोगी ?"

" जो दोगे, लूँगी।"

कुछ देर वह चुप रहे। फिर कट्टोने थोड़ा हँसकर कहा—

" हमारे जीवनका अकेलेपनसे अनायास इस तरह उद्धार हो गया। अब आओ, मेरा एक काम करो। तुम घर कब जा रहे हो ' "

" आज रात, नहीं तो कल सबेरे जरूर।"

कट्टोने तिसपर टिकुलीकी वह डिबिया ली, कंघा और शीशा, और हाथोंसे वह दो लाल चूड़ियाँ निकालीं, उन्हें एक पोटलीमे बाँध दिया, कहा—

" तुम्हारी बहिन,--क्या नाम हैं ?—गरिमा। वही मेरी जीजी। उन्हें यह जाकर देना। कहना—एक कट्टो है, नटखट लड़की, गँवारिन, उसने ये दी हैं। वह उसके मास्टर रहे है और वह उसकी जीजी हैं। कहना मैने उनसे वायदा ले लिया है, पहले जीजीको मेरे यहाँ खाना होगा। यह भी कहना, कट्टोको उन्हे अँग्रेजी पढानी होगी। और कहना, कट्टोको असीस भेजे। सेविकाईका मौका मिलेगा, एक बार तो उससे पहले भी आशीर्वाद दे ही दें।...यह सब कहोगे न ? कहो—कहोगे।"

" जरूर कहूँगा और कहूँगा, यह सुहाग कट्टोका उतरन है—।"

" हैं हैं। यह क्या कहते हो ? यह तो मैने जबरदस्ती चढा लिया था। उतरन कैसे हुआ ? नहीं नहीं, बिल्कुल नहीं। मेरे पास शुभसे शुभ जो चीज है, दे रही हूँ।"

" सब कहूँगा। और कहूँगा, कट्टोके साथ मेरा वरण हो चुका है।"

"कह देना।"

"तो मेरा काम हो चुका?"

"हाँ।"

"जाऊँ?"

"जाओ,—माँके पैर छूते जाना।"

"जानेसे पहले कुछ दोगी नहीं?—यह अच्छा वरण!"

"क्या दूँ?"

"कुछ भी तो—"

"अच्छा लो...."

तभी उसने एक आसनपर बैठकर झट-से चर्खेपर सूत काता हल्दीके रंगमें उसे रंगकर माला बनाई। दोनों हाथोंसे वरमालाके रूपमें पकड़ा, धोतीका छोर जरा आगेको किया, और एक खट्टी मीठी हँसी हँसके बिहारीके गलेमें डाल दिया। फिर एक नमस्कार किया, चरणोंमें हाथ लगा और फिर उस हाथको अपने माथेसे छुआ लिया।

इस समारोहमें बस उस कमरेकी स्तब्ध शून्यताने मानों अपनेको खोकर मौन योग दिया। बाहरी आँखे इस शुचि व्यापारपर पड़नेसे बची रहीं। इस ग्रंथि-बंधनकी एकमात्र साची होकर अचर-प्रकृति मानों जी-ही-जीमें मग्न-मूक थी।

"माला सत्यको दिखाऊँगा!" बिहारीने मन्त्र-बद्धताको तोडकर कहा।

"तुम्हारी है, जो करो।"

"जाता हूँ, कब मिलना होगा?"

"देखो—"

" अच्छा, कट्टो, प्रणाम । बिहारीका प्रणाम । प्रणाम लो और यह लो । " एक बुरी तरह गुडीमुड़ी हुआ कागज थमाकर बिहारी निकला, माँकी चरण-रज ली, रुका नहीं, चला गया ।

सौ रुपयेका नोट खोले कट्टो कुछ सेकिंड खोई-सी खड़ी रही, फिर चौकेकी सँभालमे चली गई ।

२८

बिहारी अपने घर पहुँचा । बाबूजी बैठकमें ही बैठे हैं ।

ताँगेसे उतरा नहीं कि पूछा, " आ गये ! .. " अर्थात्–'क्या लाये ?'

" हाँ, आ गया । "

" क्या बात रही ? "

" अभी आता हूँ, जरा यह सामान... ऊपर...."

" हाँ हाँ । "

बाबूजीने देखा कि सामान नौकर ले ही जा रहा है, एक मिनटको तो यहाँ बैठ ही सकता था, बात करनेमें देर लगती कितनी है, पर नहीं, ऊपर !... खैर, लक्षण बुरे नहीं हैं ।

बाबूजीसे बात तो कहेगा ही, पर कट्टोका काम खत्म करनेकी उसे जल्दी है । सबसे पहले कट्टो, फिर और कोई । जरा-सी तो पोटली है, जेबमे डालकर ऊपर पहुचा । पुकारा—" गिरी !—गिरी !—"

गिरी चौकेमे है । बाल सुखा-सुखू कर अभी गई है देखने कि महाराजिन सब कुछ ठीक कर रही है या नहीं । महाराजिनको इतना कह चुकी है, फिर भी कुछ न कुछ गड़बड़ हो ही जाता है । गरिमाको क्या वह जानती नहीं है ? ठीक नहीं करेगी तो दिल्लीमें महाराजिनोंकी कमी पड़ी है ? सो ही बात गरिमा अब बारहवी बार

महाराजिनके कानके रास्ते अकलमे प्रवेश कर देनेको वहाँ पहुँची है। मोटी, फूले नथनोवाली, सागके बाजारमे जो सब कुँजडोंसे बाजी ले जाती है, वही कुसलो इस छोटी मालकिनके सामने थर-थर काँपती है। इस देहके कम्पनमे अगर नोन बटलोईमे गिरते गिरते खीरकी पतीलीमे पड जाता हो तो पाठक अचरज न करेंगे और उसे क्षमा कर देंगे। लेकिन जिन्हें वह खीर खानी पड़ती है, उन सबके रोषकी सम्पूर्ण स्वत्वाधिकारिणी प्रतिनिधि होकर जब वह छोटी मालकिन सांपिनकी तरह चमकती और फुफकारती महाराजिनके सिरपर आ खडी होती है तो अगर नोन खीरमे नहीं पड़ता तो मिर्च दालके बजाय आँचमे पड जाती है। तब महाराजिन खाँसी और छींकसे व्यग्र होकर अपनी सफाई देनेमे अक्षम हो जाती है और छोटी मालकिन भी अपने गुस्सेको आधा निकला हुआ और आधा पेटमे ही खौलता हुआ लेकर वापिस पलायन कर जाती है। तब वह छींकती भी जाती है और झीकती भी जाती है। ऐसा ही साधारण संयोग इस समय भी घट गया था। चौकेमें उसने भैयाका आना सुना। तभी मिर्चाहुति चूल्हाग्निमे छूट गई। और तभी वह बाहर दौड़ी और तभी बोली—

"मैं....छिः-छीं:... भैया .. छि..."

भैयाने यह अपनी अगवानीपर लगातार छींकोंकी सलामी सुनी।

"यह क्या मामला है?"

"वह कम्बख्त—आक् छिः, डैम... छि ..."

"यह छिः और सुशब्दोकी बौछार मेरे आते ही .."

"यह डैम् रैस्कल .. आ ...आ .. क्....छि .."

"मुझे माफ करो, मै चला जाता हूँ भई।"

" शैतान, कलसे ही....छिः छिं....छि .. छिं...."

छींकोंका प्रकोप शान्त हुआ तब बिहारीने संबोधन किया—

" गिरी...."

" वह महाराजिन कलसे नहीं रह सकती। मै कहती हूँ...."

" मेरी बात सुनती हो या...."

" सुनती हूँ, लेकिन तुमने ही ..."

" हाँ, मैने ही सृष्टि रची, और मै ही बिगाड़—"

" तुमने ही यह महाराजिन रखवाई थी।"

" अब दोष नहीं होगा, तो। बस, अब तो स्वस्थ हुई?—या अब ..'

" स्वस्थकी बात नहीं, कोई न कोई गड़बड कर ही देती है।"

" अच्छा, अब इस अध्यायको खतम करो। प्रकोप पर्व समाप्त नवीन पर्व आरम्भ। सुनो—"

सारी आकृति और चेष्टामे " सुनाओ—" का भाव लेकर वह सुननेको हो गई।

" मै वहाँसे आ गया हूँ। तुम्हारे लिए सोहाग-कोथली ले आया हूँ। लो।"

बिहारीने वह पोटली खोलकर गरिमाके आगे फैला दी।

" किसने दी?—उस ..?"

" हाँ उसने ही। जानती तो हो उस कट्टोको?"

गरिमा कट्टोको खूब जानती है। सत्यका रुख अब तक खूब समझती जा रही थी। जानती थी,—जड़में कट्टो ही है। यह जानते ही उसने उसे अपने प्रतिद्वद्वीके रूपमे स्वीकार कर लिया था। बाबूजी और सब जोर लगा रहे हैं, तब भी वह रुख अनमनाया हुआ है—

यह देखकर इसने समझ लिया प्रतिद्वन्द्वी प्रबल है। तभी इसके बड़प्पनने उठकर इस हलकी-सी उठती हुई स्पर्द्धाको तीक्ष्ण धार दे डाली। 'वह गँवार छोकरी मेरा मुकाबला करेगी—मेरा?' यह भाव उसे दिनरात सुलगाये रहने लगा। यह सुलगता हुआ भाव कभी महाराजिनके सिरपर फूटता था, कभी माँके, और कभी बाबूजीके। गरिमा सत्यको चाहती थी, इसमे सन्देह नहीं। वह युवती थी तिसपर पढी लिखी। और सत्य भी शकलमें बिलकुल अपरूप नहीं था। और अनिच्छा यौवनका स्वभाव नहीं है। लेकिन जब कट्टोका नाम सुना, और वह तकिया देखा, तब यह साधारण-सा खिंचाव एकदम ईर्षाकी धारकी तरह पैना हो उठा। तब यह सत्यको प्यार करनेपर लाचार हो गई और यह प्यार ही काटने और घायल करने लगा।

अब बिहारी पक्की खबर ले आया है, और कट्टोने दी है कुछ चीजें! इन सबको अपनी जीतकी भेटके रूपमे उसने स्वीकार किया। कट्टो कैसी कट गई होगी! देखो न, चली थी मुझसे बदने?—आदि आदि चहकते विचारोंमें वास्तव संवादकी खुशी मानो खो गई है। सत्यसे विवाह होगा, यह बात तो जैसे उसके ध्यानमें है ही नहीं, मैं जीती हूँ, कट्टो आखिर हार गई है,—इसीकी नशीली खुशीमें खुश है।

"तो यह उसीने दीं?"

"हाँ—"

"वह क्या यह जानती नहीं, मै उस जैसी गँवारिन नहीं हूँ?"

"वह कुछ नहीं जानती...."

"मेरे लिए इनका उपयोग कुछ नहीं, सिवाय ...फेंक देनेके!...."

"हैं हैं, फेकना नहीं, मेरी कसम।"

सारा बदला चुका डालना चाहती है। इसी लिए आग्रहके साथ उसने कहा, " कहो जो कहना चाहो। न हो, तो कहो वह कैसी है। मैं उसे अब प्यार करूँगी।"

" गिरी, वह सुन्दर नहीं है। पढ़ी-लिखी ज्यादे नहीं है। हम वह बँध गये हैं, मैंने विवाह किया है।"

इसके लिए गरिमा तैयार नहीं थी। यह सौभाग्य क्या कट्टोके योग्य है? कट्टोको प्यार तो करेगी,—करती; पर यह एकदम इतना सौभाग्य? कट्टोने यह अपनी योग्यतासे कमाया नहीं है, निःसंशय छलसे प्राप्त कर लिया है।—इतनी उसकी स्पर्द्धा! उसने कहा—

" ओह, तुम्हें क्या हो जाता है, भैया। उसने जादू कर दिया है, चुड़ै ..कहींकी!"

" हाँ, जादू किया है। वह जादूगरनी है। मैंने ही उसके जादूसे सत्यकी रक्षा की है। पर रक्षा रक्षामे खुद फँस बैठा।"

" यह क्या पागलपन है....?" गरिमा बोली!

" क्या पागलपन है!...." कहते कहते बाबूजीने प्रवेश किया। अब तक बिहारी लौटा ही नहीं, यह कैसी बात है? आखिर उकताकर बाबूजी खुद ऊपर चढ आये हैं। गरिमाकी तरफ देखकर कहा—

"....यह पागलपन क्या....?"

" बाबूजी, बिहारीने ब्याह कर लिया है। वह कट्टो .."

बाबूजी, चौके, " क्या?"

" वह कट्टो लडकी, आपने सुना होगा...."

बाबूजीके मुँहसे निकला—" बिहारी?"

बिहारीने अविचलित अकम्प स्वरमें कहा—" जी।"

बाबूजी क्षणेक गुम रहे। फिर क्या हो गया?—बोले—

" बहूको कब लाओगे घरमे ? "

" बाबूजी, वह घर नही रहेगी । "

" क्या ? " जोरसे झटककर बाबूजीने कहा ।

" वह वही रहना चाहती है । "

" और तू ? "

" अभी तो इम्तहान देकर घूमने जाऊँगा । आप फिकर न करे, फेल अब कभी न हूँगा । घूमनेमे दो साल लग जायॅ,—शायद ज्यादे भी । लौटकर आपसे परामर्शके बाद, देखूँगा, क्या करूँगा । "

" और बहू ?—नही, वह यहॉ रहेगी । मेरी बहू वहॉ रहेगी, वेसी रहेगी, और यह रुपया यो भरा सडेगा ? नही, वह यहॉ रहेगी, बिहारी । "

" बुला भेजिएगा । आये, तो आ जायगी ।

" मै पहेली सुलझाना नहीं चाहता ।—कैसा यह ब्याह है तेरा ? "

" हमारा ब्याह हुआ है इसलिए कि हम दूसरा ब्याह न करेगे । साथ रहे रहे, न रहे न रहे,—कुछ बात नही । क्योंकि हम हमेशा साथ है । "

" यह पागलपन खतम करो । जाना हो जाओ । पर यह पागलपन मै नही सुनना चाहता । मै तुम्हें किसी बातसे नहीं रोकूँगा पर ऐसी दुनियासे परेकी बातें मेरे सामने न किया करो । "

तब बाबूजीने घरके आँगनमे जाकर बिहारीकी मॉसे पुकारकर कहा—

" सुना कुछ ? बिहारीने ब्याह कर लिया है । बहू वही गॉवमे रहेगी,—बिहारी लापता होगा । ऐसी बात तुमने सुनी है कभी ? "

" ब्याह हो गया—किसीको पता भी नही ! और बहू वहॉ, और

यह यहाँ भी नहीं वहाँ भी नहीं!—यह कैसा किस्सा कह रहे हो तुम ?"

"कैसा है, सो बिहारीको ही बुलाकर पूछ लेना।"

कहकर बाबूजी बैठकमे जाकर आजके अखबारमेसे दुनियाकी असारता खोजने लगे। गरिमाकी बात, हठात्, भूल ही गये।

२९

ब्याह हो गया है। बड़े घरकी बेटी,—खूब अँग्रेजी-पढी बहू गाँव आई है। दुनियाका आठवाँ आश्चर्य उठकर मानो गाँव आ गया है।

पर ठहरो; नई-नवेली बहूको देखनेकी उतावली न करो। औरतोंकी भीड़ उसे घेरे है उसे छँट जाने दो, और कट्टोको जरा छुट्टी पा लेने दो। उसके साथ साथ अकेलेमें चलेगे।

इधर कट्टोकी जान-पहचान नई बना ले। वह अब वैसी ही पेड-वाली कट्टो बन गई है। कुछ आया था जिसके कारण वह लहँगा-ओढना पहनकर कौनेमे दुबकी सिमटी बैठे रहनेकी बात सोचने लगी थी; लेकिन वह चला गया,—चलो अच्छा ही हुआ,— और फिर वह वैसी ही भागने-उछलने, चहचहाने लगी है।

जीजी कबकी आई है;—पर उसे फुर्सत नहीं निकल रही है! बात यह है कि वह इतनी जनियोंके बीचमें जायगी तो चुपचाप बठे रहना पडेगा – और, यह उससे न होगा। वह तो जीजीसे मचलना चाहती है, अभी कुछ जीजीसे उलझे बिना उससे कैसे रहा जायगा? बाल भी तो उनके काढूँगी, उनकी चीजे भी देखूँगी,—सब उनकी किताबे भी गहने भी इसीसे वह कुछ न कुछ धरा-सँभाल किये ही जा रही है।—पर ये औरतें भी कैसी हैं, जमके ही बैठ गई है, टलती ही नहीं!

—अब कहो भीतर ही भीतर कुलबुलाते कुलबुलाते तग हो गई है। बैठी हैं तो बैठी रहें,—वह तो अब जायगी ही।

लो, तैयार हो जाओ।

प्रौढा और नवीना, मुखरा और मौना, उज्ज्वला अपितु श्यामलकाता आदि विविध बखानकी स्त्रियाँ विभिन्न वर्णों और वर्णनोके साज और सिगार पहने, अचरजसे थोडा सम्मान-संभ्रम-पूर्ण अतर छोडे, 'एक'को चारों तरफसे घेरे बैठी हैं। वह एक बहू बनकर आई हुई गरिमा है। देखो तो, कैसा ओन्ना ओढे बैठी है और लहँगा सिमटाकर ऐसा कर लिया है कि दीखे ही नहीं। मानों इसे और कुछ पहनना आता ही नहीं, सदा यही पहिना की है, और सदा मानों यही कपडे पहिने, यो ही बैठी रही है। गहने एक एक अगपर झलमल झलमल कर रहे हैं। आँखे सामने किसी अज्ञात बिन्दुके भीतर घुसनेका प्रयास कर रही हैं, थक जाती हैं तो बायें हाथमे कंगनकी एक उठी हुई नोकपर आ ठहरती हैं। बहू इस तरह इतनी दृष्टियोंसे जकड़ी हुई बैठे बैठे थक गई है, चाहती है इनकी नजरें कुछ ढीली हों, कुछ बातचीत हो जिससे उसके चारों ओर फैला हुआ यह विशिष्टताका परिवेष्टन टूटे और उसे आदमीकी तरह कुछ करने धरनेका अवकाश मिले। पर ये सब आपसमे बोल सकती हैं, उससे नहीं बोल सकतीं,—न जाने यह कहीं अँग्रेजी बोल पडे! वे तो सब इसे देख सकती हैं।

बहू उठ सकती नहीं, और अब बैठी भी रह सकती नहीं। वह बडी व्यथा पा रही है! कितनी बार उस बिन्दुसे हटकर कगनेपर और कगनेसे उस बिन्दुपर लौट लौट जाकर उसकी दृष्टि थक चुकी है। तभी सुनाई दिया—

"जीजी!"

उठ पडी। देखा, जरूर वही है। अनायास कह उठी 'कट्टो!' अनायास वह खिल गई, अनायास हाथ फैल गये,—मानो स्वागतके लिए; एकदम, सब कुछ बह गया; अनायास इस कट्टोको बैठानेके लिए मानों हृदय किवाड खोलकर सम्मान-सहित खडा हो गया।

कट्टो दौडी आई, उस आलिंगनमे बँध गई।

"जीजी!"

"कट्टो!"

जैसे दो सरिताएँ मिल गईं, लताएँ मिल गईं, दो कोमलताएँ मिल गईं।

स्त्रियोने देखा कि यह क्या? कट्टो बाहर कभी नही गई, बहू यहाँ पहली बार आई है, फिर यह क्या?

वे क्या जाने कि दोनोंके हृदय,—एक ओरसे चाहे स्पर्धा और ईर्ष्यासे हो, और दूसरी ओरसे श्रद्धा और अर्चनासे बहुत पहलेसे एक-दूसरेसे परिचित हैं। और वे क्या जानें स्पर्धा और श्रद्धा, और ईर्ष्या और अर्चना एक ही भावनाके ओर और छोर है, ऋण और धन दो सिरे हैं। उन दोनों सिरोके बीचमें रहने और बहनेवाला तत्त्व है आकर्षण।

३०

दोनों अकेली है।

"जीजी, मेरी बात उन्होंने कही थी।"

"कही थी। ब्याहकी भी कही थी।"

"वह तो हँसी बहुत करते हैं। हमेशा हँसी!—यह कोई ठीक बात है?"

" अच्छा, उनकी ठीक बात नही है। फिर तू ही बता ठीक बात।"

" जीजी, कुछ नही। भला, ब्याह कैसा ? जीजी, जानती नहीं तुम, मै तो विधवा हूँ। विधवाओंका ब्याह होता है ?—छि:।"

" तुम तो एकदम ब्याहपर जैसे लानत भेजती हो!—फिर क्या बात है ?"

" कुछ बात भी हो जीजी!—बिहारी बाबू तो यों ही ..."

" देख, कट्टो, छिपेगी तो ठीक नहीं। मै फिर तेरी कुछ भी न हुई ? मै तेरी जीजी नहीं हूँ, भला ? और जीजीसे तू अपनी बात न कहेगी ?"

" हमने प्रतिज्ञा की है, वह कुँआरे रहेंगे, मै ऐसी ही रहूँगी। और हम दोनो अपनी बात नहीं सोचेंगे; दूसरोंकी सोचेगे। मुझे तो सोचनेके लिए तुम हो, और तुम्हारे 'वे' हैं जीजी, उन्होंने तो मुझे पढाया है। मै भला क्या जानती थी, और वह न होते तो आज क्या मै तुम्हे जान पाती ? बिहारी बाबूसे भी अपने आपमे ही सुखी नही रहा जाता। बिहारी बाबू तो दुनियामे बिहारके लिए ही बने है। वह क्या एकके होने लायक है,—सबके हैं! मैने यही देखकर उनके साथ प्रतिज्ञा बाँध ली। बस, यही बात है जीजी,—इसे बिहारी बाबू ब्याह कह ले या कुछ भी कह ले।"

" यह अद्भुत बात तुझे कैसी सूझी कट्टो ?"

" अद्भुत क्या है जीजी इसमें ? बिहारी बाबूको देखकर मुझे ऐसा लगा कि उनकी आत्मा किसी एकका सहारा पाकर कल्याण-रूप होकर व्याप्त हो जाना चाहती है और वह उस 'एक' को खोजते फिर रहे है। मैने अपनेसे पूछा, 'क्या मै वह 'एक' हो सकती हूँ' मनने कहा, 'क्यों नहीं ?' जीजी, सो यह बात हिम्मत करके मैने कह डाली...."

" तुमने यह आत्मा पढना कहाँ सीखा ? देखती हूँ, तुम तो बड़ी होशियार हो ! "

" जीजी, तुम तो ठट्ठा करती हो ! आत्मा क्या कोई सबकी पढी जाती है ? और क्या कोई सीखा जाता है ? बिहारी बाबू तो मुझे ऐसे दीखे जैसे छापेके अक्षर, कोई साफ साफ एक एक पढ ले । "

" तो फिर यह ब्याह कैसे हुआ ? वह तो कहते थे, ब्याह हुआ है और तुमने उनपर जादू फेरा है । "

" जीजी, वह तो बात ऐसी ही ठट्ठेसे कहा करते हैं । हम कब चाहते हैं, लोग उसे ब्याह समझे । हाँ, इतना है कि मै उनके और वह मेरे जीवनसे मिल गये हैं ।—हम बँध जो चुके हैं एक ही प्रतिज्ञामे। उनसे मेरा और मुझसे उनका जीवन बनेगा और पूर्ण होगा। उनकी वजहसे मै इकली भी अकेली न हूँगी, और हम एक दूसरेके होकर सबके होनेकी राह पा लेगे । मै उनके लिए मर जाऊँगी, ऐसे ही वह मेरे लिए मिट जायेंगे ।...पर जीजी, तुम मुझे ऐसे देख रही हो जैसे मै बिल्कुल पगली हूँ । बिल्कुल पगली थोड़े ही हूँ, हाँ तुम्हारे जितना तो नहीं जानती । सो क्या उस बातपर तुम मुझे यों देखोगी ? न न, मुझपर तुम बिगड़ नहीं पाओगी ।....अच्छा, चलो अब जीजी, घर चलो हमारे । तुम रोटी तो बनाना क्या जानती होगी, क्या काम पडता होगा वहाँ तुम्हे ऐसा । बैठी रहना, बताती जाना, मै बनाती रहूँगी। तुमसे कहा न होगा उन्होंने, आज तो तुम्हे मेरे ही यहाँ खाना खाना पड़ेगा । हाँ....और भी तो बात है,—आशीर्वादकी...आशीर्वाद दिया तुमने ?—अब यहाँ देना पड़ेगा ।—पहले दे दोगी, तब रोटी मिलेगी । "

यह कट्टो ऐसी बात करती है कि कहीसे बचनेकी राह ही नहीं

छोडती । सवाल भी करती है, और जवाब भी अपने ही आप दे देती है, जिससे 'नहीं' करनेका मौका नही रहता । गरिमा इसकी यही बात देख देखकर अचरज कर रही है । गरिमासे जो चाहे करवा लेती है, और हर बातमे अपनी ही चलाती है,—पर ऐसे ढगसे कि कुछ कहते नही बनता, बिल्कुल अखरता ही नहीं ।

यह आशीर्वाद देना-दिवाना तो किसी शिष्टताके 'कोड' मे उसने सीखा नही । न वह आशीर्वाद देनेको अत्यन्त उत्सुक है पर—

"जीजी, चुप क्यों हो ? देखो, ऐसे । मै बैठती हूँ घुटनेके बल, फिर पैरोंमें पड़ूँगी, तुम मेरे सिरपर हाथ रख दोगी,—प्रेमसे जैसे माँ हो । फिर मै उठ जाऊँगी, और मुझे गले लगा लेना । पर देखो, असली मनसे करना, नहीं तो मुझे फिर कसरत करनी पड़ेगी । जबतक ठीक नहीं होगा, तबतक छुट्टी नही दूँगी ।"

कट्टो बात तो बहुत बड़ी करती है, पर बोलती बिल्कुल बच्ची-सी है । गरिमाने अपने लिए 'माँ' सुना, और उसका हृदय न जाने एक कैसे रससे भीना हो गया । अब तो सचमुच इस लड़कीको वह कंठसे लगा लेना चाहती है । इस लडकीसे तनकर रहा नहीं जायगा,—वक्त वक्तपर बहुत पण्डिताईकी बात कर जाती है तो क्या ? उसके भीतर जो प्रसुप्त मातृत्व है, इस लड़कीने अपने लड़कपनकी मीठी बोलीसे छेडकर उसे चंचल कर दिया है । तानसेनने अपने कण्ठके दर्दसे पत्थ-रोको पिघला दिया, आर्तोंकी पुकारने न्यायकठिन परमात्माको पिघला दिया,—तब कट्टोकी हठ-मचलने शिक्षा-कठिन गरिमाको पिघला दिया तो इतनी बड़ी बात क्या हुई ?—मातृत्वके गौरव और स्नेहसे कोमल गरिमाने कहा—"कट्टो, मै ..."

लेकिन तबतक तो वह घुटनेके बल बैठ गई थी। उसने माथा पैरोमे लगाया,—पैर खींच लिये और गरिमा पानी हो वह चली।

स्नेहार्द्र कंपित वाणीसे गरिमाने कहा—

"हें हें, कट्टो,··"

पर कण्ठ बहुत भर रहा था,—हाथसे सिरको थपका और फिर दोनो हाथोंसे उठाकर आलिंगनमे बॉध लिया।

छूटते ही कट्टोने कहा—

"मेरी अच्छी जीजी, कैसी भली हो! जीजी, चलो, मेरे घर नही चलोगी?"

गरिमा बहुत बहुत बार नहीं रोई है। पर यह रोना तो बडा सुखप्रद मालूम हुआ। वह इससे हरी हो गई, जैसे बारिशसे झरी धुली नई फुलवारी हो।

"कट्टो, तू मेरे पास नही रह सकेगी? मेरे साथ घर चली चलो तो बडा अच्छा हो। ऐसी ही कट्टो बनकर रहना, सब तुझे प्यार करेगे। तुझे कोई प्यार न करेगा तो किसे करेगा?"

"मै साथ चलूँगी? कैसी अनिष्ट बात कहती हो जीजी! इस गॉवको छोड़कर और कहीं रहूँगी तो डालसे टूटे फूलकी तरह ज्यादे न रहूँगी। और यहाँ तुम्हारे घरमें मेरे जैसी गँवारिन क्या भली लगेगी? जीजी, मेरी तो यही जगह है,—यही अम्मॉका जामन-वाला घर। पर यह ऐसी बात क्या कह दी? क्या उन्होंने कहा था?"

कट्टो, इस स्थलपर क्यों छूती हो? वह अभी अभी फूटकर बह चुका है, अभी तो दर्द देता है। पर मातृत्वकी इस हिलोरमे गरिमा इस हल्केसे दर्दको बेपीर झेल गई। बोली—

"उन्होंने तो नहीं कहा। वह क्यों कहते ? पर कहो, तो कह देखूँ ?"

"नही नही नही .."

"अब तो जरूर कहूँगी, डरती क्यो हो ?"

"उन्होने 'हाँ' कर भी दी तब भी मै नहीं जाऊँगी।"

"तब तो तू आप जायगी।" एकदम 'तू' से उसने ऐसी गहरी बात कह डाली।

कुछ देर और बात हुई। पर ऐसी सब बातें हम नही बता सकते। ऐसी जगह ज्यादे खोद-बीनकी जिज्ञासा भले आदमी नही किया करते। इससे मन मनमे जो चाहे समझ लीजिए, पर जोरसे कहिए मत और पूछिए मत।

उसके बाद कट्टोने अपनी जीजीसे अनुरोध किया—

"घर चलो। रोटी मै बनाऊँगी, तुम देखती रहना बताती रहना।"

सो तो नही होगा। गरिमा क्या चुप बैठी रहेगी ? वह भी जरूर बनायगी। बनायगी नही तो मदद तो खूब ही जोर शोरसे देगी। लेकिन—

"लेकिन, मै अभी आती हूँ—मेरी कसम। तू चल इतने...। मै.... मै जरा .."

बस बस बस, कट्टोसे ज्यादे मत कहो। वह समझ गई है। वह चली जाती है, अभी भागी जा रही है। खूब बाते करो, तुम दोनोके बीचमे अब वह कौन है ?

अब उसे एकदम अकेले भाग जानेकी बड़ी झटपट पड गई।—पर बातोमे जीजी आना भूल न जायँ! बातें ही ठहरीं.—क्या अचरज है! इससे चलते चलते याद दिला गई—

"देखो, आना। कहीं .! तुम्हे मेरी ..."

"हाँ जरूर, जरूर, जरूर।"

कहती रहो कितनी ही 'जरूर,' कट्टो तो यह गई, वह गई! छोड़ गई है तुम्हें कि अब खुलकर बातें कर लो—लेकिन झटपट उसके यहाँ भी जाना है।

नई बहूने (अब तक भी टोहमे लगी हुई, सबसे नये मिनटकी और ज्यादासे ज्यादे मिर्चवाली कोई खरी-खोटी सुनने और सुनानेके लिए सदा घात देखनेवाली प्रौढाओंकी रायमे बड़ी बेहयाईके साथ) अपने नये वरको खोज निकाला—

"जी, यह कट्टो मेरे साथ चली जाय तो कैसा ?"

क्या ?—कट्टो ? फिर कट्टो ?—मानो कुछ गलत सुना गया है, इसलिए प्रश्न-सूचक दृष्टिसे देखा।

".. ... ?"

"क्यों, सुना नहीं ? या कट्टोको जानते नहीं ?"

"क्या ? कट्टो—? तब ?

"वह मेरे साथ दिल्ली जाय तो कैसा ?"

"नही।" झटकेसे पूरा जोर निर्णयमे फेककर कहा।

"नहीं ?"

"हाँ नही। जहर रखना चाहो पास, रक्खो। पर मै नहीं कहूँगा, मै नहीं रक्खूँगा। कभी मरनेका लालच आ जाय तो खानेको पास ही तैयार रहे! नहीं, कट्टोको तुम्हारे साथ या अपने साथ कभी रखनेको नहीं कहूँगा। समझीं ?"

समझी भी और नहीं भी समझी। लेकिन इस बारेमें और ज्यादे कुछ बढना ठीक नहीं समझा।

फिर बादमे बहुत ही नियमित, दोनों ओरसे पाबन्द; और अत्यन्त उचित रूपमे थोडा-सा परस्पर प्रेम-परिवर्तन हुआ। (नहीं, आप नहीं सुन पायेंगे,—धीरज न खोये और मुँह न बनाये।) जब पाबन्दी, शिष्टता और औचित्यकी परिधि आ गई, तब विवाहके प्रथम दिनका प्रेमालाप रोक रखना पडा और गरिमा कट्टोके घरके लिए चल दी।

३१

साग तो अब हुआ जाता है। रायता हो ही गया है, सब कुछ हो गया है, बस अब पूरी उतारनी..... हैं! यह चून तो अभी निकला ही नहीं है, परॉत तो यूँ ही पड़ी है! उसनेगा, तब कहीं.......इतने कढाई जल....यह सब सोचकर, साग-सनी कछींको झटसे छोड, हडबड़ाई उठ खडी हो गई। देखो न, यह जीजीके झंझटमे आटा रह ही गया—पर लो, अब सब हुआ जाता है। वह चलनेको हुई ही कि—

"क्यों क्यों?—क्या हुआ?"

कट्टोने हॅसते-हॅसते बताया—

"सब हुआ, आटा तो निकाला ही नहीं। ब्याहके सामान तो हो गये, दूल्हा कहॉ है!"

"लो मै लाई।"

"नहीं नहीं...."

"कहॉ है?"

"वह रहा मटकेमे।"

गरिमा परॉत लेकर आटा लेने गई। कट्टो अपने सागमे लग गई। साग चलाते—देखा कि यह क्या?

"जीजी चून खिडा दिया !"

"—उठाये देती हूँ !"

"हैं हैं, धरतीका चून !"

उठानेको हो ही रही थी वहीं छोड दिया। फिर कट्टोका ख्याल गया—

"जीजी, इतना चून नहीं, थोडा।"

एक एक मुट्ठी डालती जाती और पूछती जाती 'इतना?' आखिर घटते घटते ठीक परिमाणमे आया ही, डरते डरते कितनी मुट्ठी कम की गई, पता नही।

जीजी जब चलनेको हुई कि पता चला उसकी आस्मानी रगकी बेलदार साड़ीका सामनेका हिस्सा सफेद हो गया है, और कोहनी तक हाथ भी मानो भूरे पाउडरसे सफेद कर लिये गये हैं।

"जीजी, यह क्या कर रही हो? आज सबको हँसानेकी ठानी है या यह हाथका और साडीका रंग नही भाता?"

"बोल बोल, ओर क्या करूँ?"

"करो यह कि बैठो; और मुझे हुक्म दो। सबके अलग अलग काम होते हैं। कोई किसीका करे तो बडी गडबड हो जाय। तुम्हें तो तुम्हारा काम ही सोभता है। चून-दालका और बासन-भाँड़ोंका काम तो तुम्हारा है नही जीजी। मेरा है, मुझे करने दो। और तुम्हारा जो देखनेका, बतानेका, करवानेका है, सो तुम करो।"

"नही—री .. मै अच्छी लोई बनाती हूँ, पूरीकी। ."

रोज रोजकी बात तो कहती नही। रोज तो उससे हो भी नहीं सकेगा। लेकिन आज तो बगैर काम किये वह नही मानेगी। जरूर कुछ पूरियाँ,—और अपनी साडी और अपने हाथ खराब करेगी,—चाहे

पसीना आये, आँखोमे पानी आये, घी उछलकर हाथ जला दे, और चाहे कट्टोको कितनी ही अडचन पैदा हो ! कट्टोका कहाँ भाग कि ऐसी अडचन पैदा करनेवाली उसके यहाँ आई है ! वह मदद करनेके नामपर सिर्फ काम बढा रही है और कट्टोको अपने खानेके सामानहीकी नहीं, इस गरिमाकी भी फिक्र करनी पड रही है—पर चाहती है, रोज रोज ऐसा हो। कोई मिले तो उसे प्यार करनेवाला, वह उसे सिहासनपर बैठाकर चौबीसों घण्टे उसकी चाकरी बजायेगी और इसमे वह कृतार्थ होगी। आज वह कितनी खुश है, इसको बहुत कम लोग समझ सकते है।

इसी तरह खाना आखिर बन गया है। कट्टोकी अम्माँ भी अब आ गई है। बहूकी लोरियाँ वह ले चुकी है। कैसी महारानी बहू है ! बड-भागिनी हो, पूतोसे सुखी रहे, राज करे, आदि अपनी मातृहृदयकी उछाह-रससे भरी असीसें वह उसपर बरसा चुकी है,—कुछ हर्षके आँसू भी।

वही माँ इस नौसिखुए हाथोंकी बेढब कार्रवाईको देखकर बडी खुश हो रही है।

तब सत्यको बुलाकर जिमाया गया। गरिमाकी साड़ी कानके आगे तक खीच ली गई है। पर वह ज्यादा बोल नही रही है। सत्य भी ज्यादा बोला नही। माँने जो बात छोड़ी तो सत्यने उखड़ी 'हाँ हूँ' से उसका स्वागत किया, इससे बात करनेका माँका उत्साह भी भग हो गया है। कट्टो तो मानो अपनी कढाहीकी सम्हालमे एकदम व्यस्त है। उसे तो सत्यकी ओर आँख उठानेकी भी छुट्टी नहीं मिल रही है। और यह कौन कह सकता है कि वह इस प्रकारकी छुट्टी नही चाहती। उसका मुँह मानो कामकी भीडने सी रक्खा है। उससे, इसलिए, एक भी

शब्द नहीं निकला है। हॉ, काम बेधडक चल रहा है। न सिर उघड़े-बेउघडेकी पर्वाह है, न यह कि हाथ यहॉ तक खुले हैं, और न इस बातकी ही कि थालीमे पूरी ठीक जगह पड़ती है या नहीं, क्योंकि अक्सर ठीक उसी समय कढाईके घीमे कुछ खास काम निकल आता है, और आखे उस घीकी ओर ही रखनी पडती हैं।

वृत्तांतके अध्यायका यह पृष्ठ या कहें यह पैराग्राफ, इन सब जमी हुई चुप्पियोंके कारण, इतना नीरस हो गया है कि हम उसे पाठकोंके सामने नहीं रखना चाहते। इसलिए—

"जीजी, बैठो न।"

"तुम भी तो बैठो।"

"मै पीछे खाऊँगी। निपटाना भी तो है।"

"निपटा लो तो फिर। मै भी पीछे ही खाऊँगी।"

"नहीं जीजी, यह कोई बात है? तुम तो मेहमान हो, जीजी हो।"

"अच्छी जीजी हूँ, और अच्छी मेहमान हूँ,—इतना तो काम लिया कि—"

"नहीं नहीं, मैने तो यह परोस भी दी थाली—"

"परोस दी तो रक्खी रहने दो। ठंडी काटेगी तो है नहीं।"

कट्टो हार गई। और यह हारना कैसा अच्छा लगता है! कट्टोने कहा—

"अच्छा तो लो, मै भी अब निबटी। तुम्हें देर तक भूखी नही रक्खूँगी। पर तुमने फैलानेमे मदद दी तो अब निबटानेमे भी तो.."

"बोलो, बोलो...."

तब मिलकर उठा-धराई की गई। कट्टोने आधा काम किया; आधा बताया कि ऐसे करो। इससे काममे कुछ शीघ्रता हुई हो सो बात नहीं,

पर वह देर किसीको मालूम नही हुई,—और ऐसा लगा जैसे काम सचमुच जल्दी हो गया।

तब खाना हुआ दोनों सहेलियोका। उनहार-मनुहार, छीन-झपट गुदगुदाहट और जबरदस्ती आदि आदि बहुतसे व्यजन भी थालीके व्यंजनोमे मिल गये। और इनके कारण भोजन बहुत स्वादिष्ट हो गया। वे कट्टोने बनाये थे, इनके बनानेमे ज्यादे श्रेय गरिमाका था। शहर दिल्लीमे वह नियमकी विधि-निषेधकी रेखाओंसे घिरकर कई कोणोंकी ऐसी ज्यामितिकी पिण्ड बन गई थी जो हिल-हिला नहीं सकती। यहॉ,—कट्टोके यहाँ आकर वह रेखाएँ हट गई। तब जो कुछ दबा हुआ, घुटा हुआ और घिरा हुआ था, वह तनिक तीखे वेगसे उमड़ पड़ा। इसलिए इस एक थालीमे खाते वक्त उसने कट्टोके साथ ऐसा दंगा मचाया कि क्या कोई मचा सके।

सहेलियोंका यह काम हम नही देखेगे, क्योंकि क्या ठीक, इस ऊधम दगेमें धोती कहाँ बहक जाय, पल्ला कहॉ हो जाय, और हाथ न जाने कहाँ कहाँ पड़े। इसलिए अगर सभ्य हो तो ऑख मींचकर लौट पडो। कहीं पता चल जाय और आयदा वैसा ऊधम ही बन्द हो जाय,—तब तो दुनियाकी भारी क्षति होगी;—हम सच कहते हैं।

३२

लेकिन दिन एक-से नहीं रहते। काल चला जाता है और चीजोंको नई पुरानी कर जाता है। नईका काम है पुरानी हो जाय, पुरानीका काम है मर जाय। यह मरी, फिर शायद किसी विशेष पद्धतिसे नई हो जाती है। वह विशेष विधि क्या है, सो हम क्या जाने? जिसे विद्वानोने खोजा, मर गये पर नहीं पा गये, खोज रहे हैं, मर रहे हैं, पर नहीं पा

रहे है,—उसीको हम क्या जाने ? हमसे बहुत ज्यादे मेहनत नहीं होती, इस खोजने खोजनेमे ही और पानेके लालचमे खोने खोनेमे ही हमसे जिन्दगी नही बितायी जायगी। हमने तो एक शब्दमे कह दिया 'परमात्मा,' और मानो हमने पा लिया। हमारी छोटी-सी गर्ज तो पूरी हो गई। पर लोग हैं, खोजनेसे थकना ही नही चाहते। कहते है, हम पाकर ही छोडेगे। हम उनको धन्यवाद देते है, हाथ जोडते है, बडी श्रद्धासे 'नास्तिक' सहते हैं, पर कहते हैं, 'भाई, खूब खोजो, जितना बने उतना। पर विदासे एक दिन पहले समाधान नही मिल पाये तो हमारे साथ हो जाना और कहना 'परमात्मा' मिल गया तो हम इसका जिम्मा लेते है कि जितने कोप मिलेगे हम जबरदस्ती उनमेसे 'परमात्मा' मिटा डालगे।

पर हम बहक गये। कट्टो और गरिमा और हमारे वृत्तान्तका परमात्मासे कोई विशेष निजी सम्बन्ध नहीं है। सिर्फ नये-पुरानेकी बात थी। सो बात यह है कि गाँवका स्वाद पुराना हो गया है, कट्टोसे मन अब वैसा नही खिचता, पहले-जैसा नही मिलता और नही बहलता। अब अखबारोकी जरूरत अनुभव हो रही है—किताबे भी तो नही हैं! उनसे अच्छी बोलती है, बहुत तनकर भी नही रहती, पर ये गाँवकी औरते,—उँह उनसे दिल नही मिलाया जा सकता, ठीक बोलतीं नहीं, ठीक बैठती नहीं, ठीक बात भी नही समझती।—बोलो, बात भी तो नहीं समझती! फिर कैसे दो मिनट उनसे चर्चाको जी चाहे ? वहाँ दिल्लीमे लता थी,, जाह्नवी थी, कभी घर आ जातीं थीं, होता तो वही चली जाती थी, उनसे बात तो होती थी दुनियाकी और कुछ अक्लकी, यहाँ तो वह बात नहीं। दुनियाकी कुछ खबर नहीं रहती,—एक ही बँधा रोटी-चूल्हा और पति। आपसकी 'तू और मै'। वहाँ बाग थे, जी चाहा जब साफ हवा ले ली,—यहाँ हवा भी

गन्दगीमेसे छनकर आती है, गाँवके चारों तरफ़ जहाँ-देखो घूरा, उसकी हवा,—क्या, वह कार्बन, कार्बन आक्‌....खैर, कुछ तन्दुरुस्तीको खराब कर देगी। मैं, देखो, कैसी सूखी-सी....

साराश यह कि जब नई बात पुरानी बूढी हो गई तो ये दोष सब उसके ऊपर सिकुड़नकी तरह, गिन-लो ऐसे, फैल गये।

तब एक दिन एक चिट्ठी भी बाबूजीकी आ गई।

—" सत्य, गाँवमें तो काफी दिन हो गये। अब चाहो तो यहाँ आ जाओ। गिरीका मन पूरी तरह न लगा हो, तो तुम जानते ही हो, अचरजकी बात नहीं। वह ऐसी जगह रही नहीं। मुझे कुछ और नहीं, यही खयाल है कि कहीं स्वास्थ्यपर असर न पड़ जाय। स्वास्थ्य पहले, सब कुछ बादमें। लिखो, कब आ रहे हो, ताकि गाड़ी भेज दी जाय। जल्दी ही आ जाओ। गरिमा अच्छी होगी। प्यार कह दो, कहो, मुझे चिट्ठी लिखना एकदम भूल न जाय। और सब अच्छे हैं।

तुम्हारा—
भगवद्दयाल

पुनः
चाहो तो आनेका तार दे देना—

तब तक सत्य घर जानेके काफी पक्षमें हो गया था। गरिमाके स्वास्थ्यकी ओरसे निश्चिन्त वह नहीं रहना चाहता। गरिमाने बताया है, गर्मी है, हवाकी तबदीली चाहिए, यहाँका पानी ठीक नहीं, जी मिचलाया-सा अनमना-सा रहता है। Aloofness की (एकाकी) जिंदगी बितानी पडती है, सोसायटीका अभाव है, दिमागको खुराक और ताजगी नहीं मिलती,—शायद इसीसे ऐसा है। गरिमाने यह भी कहा था, " पर मुझे कुछ नहीं। तुम जहाँ अच्छे, मै भी वहाँ ही अच्छी। तुम्हें गाँव माफिक है तो ठीक है, मेरा क्या ? "

यह अन्तका उलटा लगनेवाला तर्क ज्यादेतर तुरन्त सिद्धि दिलवा देता है। यह बहुत कम चूकता है, और मर्मपर इस प्रकार बैठता है कि सौमें निन्यानवे हिस्से सिद्धि हुई ही रक्खी समझो। अश्रु-सिंचन-तर्ककी यह सूक्ष्म और हल्की पर्याय है, पर गला देने, पिघला देने और कहींका न छोडनेमें उससे कहीं कारगर। सोचते तो थे ही जानेकी, इस चिट्ठीने मानों दर्वाजा खोल दिया, कहा, "आओ, आ जाओ।"

फिर चलनेके साज-सामान होने लगे, पुलिन्दों और ट्रंकोंकी सँभाल और बाँध। नयी बहू जा रही है, यह खबर कुसलोने इससे, और उसने दूसरे उससे, और फिर तीसरे और चौथे.. इस प्रकार 'इस उसके' पंखोंपर चढ़कर गाँव-भरका चक्कर लगा आई। इसी चक्करमें मिली वह कट्टोको।

"जीजी जा रही हैं! वह भी जा रहे हैं!"

वह कई दिनोंसे नहीं गई तो क्या, और जीजी नहीं बोलतीं तो क्या, अब जाये बगैर उससे नहीं रहा जायगा।

पहुँची।—बहुत-सा सामान उठाना-धरना है। कपड़े-लत्ते कुछ मैले हैं, सो अलग पोटलीमें बँधेंगे। और ये धोबीके यहाँसे नये मँगाये हैं,—सबके सब ट्रंकोंमें चिने जायँगे। यह भी ख्याल रक्खा जायगा कि कौन किसमें।—यह सब काम देखकर कट्टो चुप इन्तजार करने लगी है, जीजी वक्त पायें, देखें, तब बोले। जो वह मैली धोती वहाँ लटक रही है, उसे देखनेमें भी अचानक ही यह कट्टो दीख गई है। पर अभी तो और भी बहुत-से कपड़े हैं। निगाह उठानेकी कब फुर्सत मिलेगी,—कुछ ठिकाना तो नहीं।

गरिमाके मनकी पूछते हो? वह अपनेको मन ही मन दोषी समझ

रही है। देखकर भी नहीं देख रही है,—सो भी अनुभव कर रही है कि दोष हो रहा है। पर दोषको मिटानेकी चेष्टा उसके जैसे स्वभाव-वालीको कठिन हो रही है। इसलिए, वह अपने मनको भुलानेके लिए, कि जैसे मन मान ले सचमुच कट्टो दीखी ही नहीं, धोबीके कपडोंके ढेरमेंसे वह अत्यधिक व्यस्तता प्राप्त कर लेना चाहती है।

आखिर, कट्टोने कहा, "जीजी !...."

अब तो यह व्यर्थ भुलानेकी कोशिश, यह अभिनय, समाप्त करना ही पडेगा।

'कट्टो ! ..."

"जीजी, जा रही हो ?"

"हाँ।"

"आओगी ?—कब आओगी ?"

"सो तो वह जानें।"

"नहीं आओगी ?"

"क्या कह सकती हूँ, कट्टो ?"

"जीजी, आना चाहो, आ सकोगी। क्या और कुछ रोज नहीं रह सकतीं ?"

"कट्टो, मन नहीं लगता। कोई बोलनेवाला नहीं मिलता। ऐसी जगह मै रही भी नहीं कभी।"

"पाँच छः रोजसे मै आई नहीं। क्या मालूम था, मेरी जीजीका मन नहीं लग रहा है। जीजी, न होता तुम्हीं बुला लेती। बुलानेपर सिरके बल आती। जीजी, कट्टोसे रूठोगी तो कट्टो क्या करेगी ?"

जीजी कुछ बोल नहीं सकी। कुछ 'नहीं-हाँ' कर दिया। कट्टोको छोटा बनना आता है, और जिसे छोटा बनना आता है, उसे प्यार पाना

आता है। जब इस तरह पीछे पड़ जाती है तो कट्टोको प्यार न देना कठिन हो जाता है। सो ही गरिमाकी अवस्था है।

"जीजी, नाराज हुई हो तो बता दो। कुसूर हुआ हो तो बता दो, अब नहीं होगा। और देखो," उसने आँख मिलाकर, और फिर पैर छूकर, हाथ जोड़ते हुए कहा, "देखो, जो हुआ सो माफ कर दो।... कर दिया न? देखो जीजी, कट्टोकी बुरी बात मनमें ले जाओगी तो ठीक नहीं। तुम्हारे मनको भी चैन नहीं मिलेगा, मै तो यहाँ मरती रहूँगी ही।"

गरिमाने दोनों हाथ उसके कंधेपर रक्खे।

"कपड़े ठी...." कहते हुए सत्य भीतर आये। देखकर ठिठक गये। वह अब कट्टोके सामने पड़ते घबड़ाते हैं। पदध्वनिपर मुड़कर कट्टोने देखा, सत्य है। उसने पैर छूकर, पूछा—

"तुम जा रहे हो?—जीजी फिर कब आयेंगीं?"

"कह नहीं सकता।"

"बिल्कुल नहीं कह सकते?"

"कैसे कह सकता हूँ?"

"तो फिर कब मिलना हो?—कट्टोका कहा-सुना माफ कर देना। और कुछ हो तो लिखना। कट्टोको पढ़ाया, अब उससे कुछ सेवा नहीं लेना चाहते?"

मास्टर चुप।

"तो मै जाती हूँ। जीजी, इनको कुछ हो जाय तो मुझे जरूर जरूर लिखना। और तुमसे जब बने यहाँ आना। घर तो तुम्हारा यही है अब। और तुम दोनों माफ कर देना। कट्टो बड़ी भूले करती है, बड़ी मूरख लड़की है। और तुम दोनों सुखी रहना। और कट्टोकी भी कभी याद कर लेना, क्योंकि कट्टो तुम्हारी बहुत बहुत याद करेगी।"

कट्टो फिर एक वार दोनोंको नमस्कार करके और जीजीसे गले मिलकर चली गई।

सत्य अब जल्दी जल्दी किसी काममे नहीं लग जायेगे तो रो पड़ेंगे, इससे झट झट कपड़े फैलाने और इकट्ठे करने लगे। कहा—

"जल्दी करो, जल्दी।"

गरिमाको आँसू छिपानेकी बहुत ज्यादे जरूरत नहीं है, इसलिए वह स्वतन्त्रतासे कपड़े भिगो रही है।

३३

गरिमा-सत्यका, और कट्टो-बिहारीका विवाह हो गया है। और बहुत कुछ काम हमारा खतम हो गया है। इक्कीसवीं सदीके अनुसार हम सन्तानके शौकीन नहीं हैं,—इसलिए उस बात तक कहनेके लिए ठहरेंगे नहीं।

सत्यने दिल्ली जाकर देखा, यह मकान ज्यादा खुला और अच्छा है। पत्थरका फर्श है, नल-बिजलीका आराम है। और भी सब सुविधाएँ ही सुविधाएँ हैं। इसलिए बाबूजी कहते हैं तो वह दिल्ली ही रहेगा।

रहना अब दिल्लीमे ही होने लगा। बिहारीपर भरोसा नहीं है। बिहारी कच्चा आदमी नहीं है कि किसीकी खातिर टूट जाय,—बाबूजी यह बहुत अच्छी तरह जानते हैं। इसीलिए सत्यको अपने पास बसाया है।

तो अब माँको भी गाँवसे बुला लिया जाय। माँ आई तो, पर बाप-दादोंका मकान छोड़नेका सदमा साथ लेकर आई और थोड़े दिनों

बाद यह घर भी और यह लोक भी छोड़ गई। दो हफ्तेके अनन्तर गरिमाकी माँका भी देह छूट गया।

तब घरके भीतरका बोझ गरिमाके सिरपर आया। उसने काफी अच्छी तरह निबाहा। पर निबाहनेमें नौकर अब काफी लगते हैं। गरिमाने नौकरोंसे निबटनेका भी एक काफी जटिल काम बढा लिया है।

बाबूजी अब इधर ढीले हो चले हैं। बाहरकी दौड़-धूप सत्यके सिर आ पड़ी है। इस तरह सत्यके निर्बाध आदर्श-चिन्तनमे बाधा पडती है। वह, जो होता है, करता तो है, पर झींकते हुए, झिझकते हुए और शर्माते हुए।

अब बाबूजीने उसे समझाना शुरू किया है और गरिमाने टेढे ढंगसे लेना। आदर्शकी आराधनाका काम उसकी निगाहमे कितना ही बडा काम हो, दूसरोको विश्वास कराना कठिन है। लोगोंकी निगाहमे वह सब-कुछ निठल्लेपनका बहाना है, अकर्मण्यताकी सफाईका नाम है। निठल्लेपनसे दुनिया नाखुश रहती है, और फिर आदमी खुद भी अपनेसे नाखुश रहने लगता है।

गरिमा जब तब ऐसी चोटें करती है कि भीतर ही भीतर झुलस रहते हैं, पर कहते कुछ नहीं बन सकता। घरका जो अधिकार है, कहा जा सकता है वह गरिमाके अनुग्रहका फल है। और गरिमा इस सत्यका प्रयोग खूब होशियारीसे और खूब निशानेसे करना जानती है।

इधर बाबूजीने अदालतका थोड़ा-बहुत काम पहले ही लेना शुरू कर रक्खा था। अब ज्यादे ज्यादे लेने लगे। उधर ऊँच-नीच भी समझाते जाते थे। परिणाम यह हुआ कि एक रोज सत्यका नाम भी बाकायदा वकीलोंमें दर्ज हो गया।

धीरे धीरे ठाठ भी बढ़े, नखरे भी बढ़े और अधिकार-प्रयोग

भी। जितनी वकालत कम चलती थी, उतने ही ठाठकी ज्यादा जरूरत थी,—शायद व्यवसायकी नीतिके तौरपर। और जितनी ही वकालत कम चलती थी, उतना ही नखरे और अधिकार-प्रयोग तीखे होते जाते थे। मानों जो अदालतके खाली घंटोंमें, सूट-बूट-सज्जित अवस्थामें, आत्म-दर्पके विचार बन्द हृदयमें उठते रहते हैं वे घरमें ढक्कन खुलते ही बदलेके साथ निकलते हैं।

बिहारी इम्तहान देकर चला ही गया है। वह पास भी हो गया और पास हुएको भी दस महीने होने आ गये। पत्र तो उसके आते हैं, पर पूरा पता नहीं लिखा होता। बाबूजी जानते हैं कि फ़िक्र और ढूँढसे कुछ परिणाम न होगा, इससे चुप है।

बाबूजी अब गरिमासे कभी कभी तंग दीख आते हैं। गरिमाका भी ख्याल है कि बाबूजी बुढाकर चिड़-चिडे बन गये हैं। इसलिए अब वह उनकी बातको उतनी पर्वाहसे नहीं सुन सकती।

अब घर उसके हाथमे है। उस घरकी एक बात है?—दस बातें है। बाबूजीको वे सब कैसे समझाई जा सकती हैं? बाबूजी यह सब तो देखते नहीं, यों ही गरिमा बेचारीसे उलझ पड़ते हैं। उसे भी लाचार कुछ सीधी-सी कह देनी पडती है।

ऐसी अवस्थामे वह बिहारी कहाँ चला गया है? फिर फिर कर बेचारे बापको वही याद आता है। अब जरा अस्वस्थ रहते हैं। खाँसी उठती है, बदन दर्द करता रहता है। सत्य नियमसे बँधे दो वक्त आता है। अब कामकाजी आदमी है, वकील है, बहुत तो फुर्सत पाता नहीं। दस धंधे है, सौ झझटें हैं। बाबूजी तो बीमार हैं,—जमीन-जायदाद, लेन-देनका भी सब काम उसीको भुगताना पड़ता है। लेकिन बाबूजी चाहते हैं कि दस बार आये, सो कैसे आये? अब फुर्सत निकालकर

दोसे ज्यादे बार आता है तो इशारे इशारेमे यह बात बाबूजीको समझाता है। बाबूजी आँख मीच लेते हैं,—मानों समझ गये हों, पर समझते नहीं, फिर वही उम्मीद करने लगते हैं।

हाय!—बिहारी कहाँ है? बेचारा बाप उसीकी याद करता है। उसका यह सफेद पका सिर बहुत कुछ जानता है, पर लाचार है। जानता है, बिहारी था जो सेकिंड-भर न छोड़ता उसे,—चाहे वकालत जाती चूल्हेमे। और वकालत नहीं जाती चूल्हेमे, जैसी कि अब सत्य उसे भेज रहा है। लेकिन बूढा लाचार है। बिहारी—?

तभी दुर्घटना हो गई। मोटर टकरा गई, वृद्धके चोट आई, सत्य बच गया। सत्य श्वसुरको अस्पताल पहुँचाते ही जरा घर आ गया है। पीछे ही उसके बिहारी अस्पताल पहुँच गया।

वृद्धने पहचान लिया, "आ गया बेटा?"

"आ गया बाबूजी।—बस, अब अच्छे हुए, घर चलेंगे।"

"बिहारी, नहीं, दर्द बहुत हैं। दिन हो गये पूरे।"

"नहीं नहीं बाबूजी, अभी मै कट्टोको दिखाऊँगा। और वह आपकी सेवा करेगी और आप अच्छे हो जाएँगे। कट्टो और कुछ जानती नहीं, सिवा सेवा करनेके। आपको वह चंगा करके छोड़ेगी।"

"कहाँ है,—कहाँ है वह बेटा?"

"अब शाम तक पहुँची। तार दे दिया है।"

"मै उसे नहीं जानता, तुझे जानता हूँ। तेरी पसन्द कभी ग़लत नहीं हो सकती।"

"बाबूजी, वह देवी है।"

"बिहारी, दर्द बहुत है। बोलो मत बेटा, बोलनेसे...." बात आगे पूरी नहीं हो पाई।

कट्टो आई। कट्टोने सेवा की, आशीर्वाद पाया, सफेद पलकोंके नीचे रोती हुई आँखोंके कुछ बहुत मीठे आँसू पाये। और पिता मर गये।

मोटर कम्बख्त रास्तेमें खराब हो गई थी, भीड़में धीरेसे चली, यह और वह!—"हाय!" सत्यने कहा, "मै आखिरी वक्त पिताके पास भी न रह सका!"

३४

अगले रोज़ यह चिट्ठी सत्यको मि० ......एडवोकेटका चपरासी दे गया—

"बेटा सत्य, मेरे दो बेटा थे, बिहारी और सत्य। तुम्हे मैने गरिमा दी, जिसपर मैंने सबसे ज्यादे प्यार वारा और जिसको मैने सबसे कीमती चीज़ समझा अब बाकी चीज़ बिहारीको दे जाता हूँ। मि०....... एडवोकेटके यहाँ........बैंकके 'करण्ट एकाउण्ट' के अतिरिक्त मेरी सम्पत्तिका सब ब्योरा है। वह ठीक कर लेंगे। बिहारीको शायद इसकी जरूरत पड़े। तुम तो लायक हो, कमा लोगे और दुनियामें अपनी जगह बना लोगे। पर बिहारीको तो उड़ानेके लिए शायद ये भी काफ़ी न हों। तुम्हारा—भगवद्दयाल।"

पढ़कर सत्यको गुस्सा हुआ,—बदल गये। वह अब इस मकानमे भी नहीं रह सकते। बिहारीके दानपर वह नहीं रहेंगे,—एक मिनट भी नहीं रहेगे। ये सब विचार और उनका कारण समझाकर उन्होंने गरिमासे कह दिया। गरिमा मकान छोड़नेको राजी नहीं हुई। मत हो, पर सत्यका आत्मसम्मान इतना सस्ता नहीं है। तत्क्षण कुछ अपना सामान लेकर और नकद सौ रुपये लेकर वह चला गया। एक छोटा-सा घर

किराये लिया, और वहाँ रहने लगा। मि०...........एडवोकेटको लिख दिया—

" मि० ... ..एडवोकेट, मैने मृत मि० भगवद्दयालकी जायदाद परसे कब्जा छोड़ दिया है। आप जब चाहें मुझे आफिस बुलाकर सब समझ सकते हैं। उनकी लड़की,—मेरी स्त्री अभी उसी मकानमें है। उसके लिए मै जिम्मेदार नहीं हूँ।

आपका

..........."

बिहारीको पता चला। बिहारीसे कट्टोको।

पता आखिर मकानका लगाया ही। एक खाटपर बैठा सत्य सोचमें था। जीवनपर दृष्टि डाल रहा है और उसे समझनेकी चेष्टा कर रहा है। उस सारे जीवनमे कोई रीढ़ नहीं दिखाई देती।

आहट हुई, आँखें उठीं, देखा, कट्टो है। जहाँ गरिमा नहीं आई,—इंकार कर दिया, जहाँ अभी कोई भी आस बँधानेवाला नहीं, वहाँ कट्टो!—कट्टो, जिसको लांछित और अपमानित किया है? वहाँ कट्टो,—क्या उपहास करने आई है?

"तुम घर क्यों छोड़ आये?"

"वह मेरा घर नहीं था।"

"यह कैसी बात कहते हो?"

"वह बिहारीका है।"

"वह क्या पराये हैं?"

"हाँ, पराये हैं?"

"हें हें, यह न कहो।"

"वह घर-भर मेरा पराया है।"

" हैं, यह क्या कहते हो ? खबरदार, जो ऐसा कहा! मेरी जीजीको तुम—"

" देखीं तुम्हारी जीजी ..।"

तब उसने गिरकर पैर पकड़ लिए—

"मेरी जीजीको तुम कुछ नहीं कह पाओगे। क्या मैं तुम्हारी नहीं हूँ ?"

" नहीं, कोई नहीं हो। मैंने अपने हाथसे तोड़कर तुम्हें दूर फेंक दिया, और उस ..."

" बस बस, मेरी खातिर बस। मैं तुमसे कहती हूँ, उन्होंने घरसे न आकर गलती नहीं की। तुम्हीं क्यों चले आये ?"

" क्या मै बेहया बनकर रहता ?"

" मेरी प्रार्थना मानों, चलो। हाथ जोडती हूँ।"

" यह नहीं कर सकूँगा, कट्टो। माफ करना।"

" नहीं ?"

" नहीं।"

" नहीं कर सकोगे ?"

" और सब कर सकूँगा। यह नहीं।"

" और सब ?"

" और सब,—हाँ। यह नहीं।"

" अपनी बातको याद रखना।" कहकर उसने चरण छुए और वह चली गई।

अगले रोज आई, चालीस हजारके नकद नोट सामने किये।

" न न न।"

" बोलो नहीं, कह चुके हो।"

" कट्टो !...."

" देखो, तुम ज़ुबान हार चुके हो।"

" कट्टो, मुझे नरकमे मत घसीटो।"

" हे, यह क्या अशुभ लाते हो मुँहपर।"

उन्हे रुपयेकी जरूरत थी। वह उनकी आदतमें पड़ गये थे। यही कमी थी जिसने 'न न न' को कप करते करते आखिर अनमने मनसे लेनेको बाध्य कर दिया। अब उनकी पैरोंमें पड़नेकी बारी आई। जो तना रहा, उसे रुपयोंने झुकाया। सत्य कट्टोके पैर छूनेको बढा—

असह्य त्रासके भावसे झट पैर पीछे खींचकर वह बोली—हाथ जोडती हूँ, मुझे लज्जित न करो।

" कट्टो!"

" एक अच्छा-सा मकान लो। मेरी जीजी वहाँ रहेगी, यहाँ कैसे रहतीं?"

सत्य कुछ देर बेसुध-सा सुनता रहा। फिर हठात् स्वस्थ बनकर बोला-

" तुम्हारे कहनेसे सब करूँगा, नहीं तो ..."

मुँहपर उँगली रखकर कट्टोने कहा—

" चुप!"

सत्य चुप।

" जीजीको मेरी कुछ मत कहना।—कहो।"

" कुछ नहीं कहूँगा।"

तब फिर कट्टो सत्यको पानी पानी हुआ छोडकर चली गई।

३५

" अब?"

कट्टोने बिहारीसे पूछा—

" अब ? "

" अब हमारा यज्ञ आरम्भ होता है। "

" मै क्या करूँ ? "

" गाँव जाओ। बच्चियोंको पढ़ाना, उसीसे गुजारा चलाना। "

" तुम ? "

" मै भी गाँव जाकर किसान बनता हूँ। "

" उस,—मेरे गाँवमे....? "

" नहीं। वही—दूर,—फिर भी पास। अलग, तो भी एक। कहीं दूर गाँवमे जाऊँगा। "

स्वर हठात् बदल गया, मानो उसमे कुछ कसक आ मिली। जिज्ञासा की—

" यह रुपया ! "

" इसका उपयोग कुछ समझमे नही आता। "

" इतने पर्यटनसे इसका उपयोग नहीं समझ आया ?

" नहीं। भिखारियोंको बाँटूँ, वह बढते हैं। किसानोंको दूँ, वह इसपर आसरा डालनेकी आदतमें पड़ जाते हैं। जिसे देता हूँ, वही उसके चस्केमें पड़ जाता है, और फिर परिश्रमसे कटता और जी चुराता है। उद्योग चलाऊँ तो और रोग पीछे पड़ जाते हैं,—मशीनका और केन्द्रित सम्पत्ति और केन्द्रित व्यवसायका। पैदा करो, और फिर खपाओ। जहाँ श्रम केन्द्रित हो गया, वहाँ श्रमका मूल्य और श्रमकी असलियत घट गई, और पैदायश बढानेकी फिक्र हो गई। उसके लिए फिर बलात् खपत बढानेकी तरकीबें सोचनी पड़ती हैं। यह अपनी अपनी खातिर पैदायश और खपत बढ़ानेकी प्रवृत्ति मेरे ख्यालमें बड़ी गड़बड़ है। मेरे ख्यालमे यह पैसा ही गड़बड़ है। पैसेने परिश्रमका सम्मान नष्ट कर दिया और उसे किरायेकी चीज बना दिया।...."

"फिर ?"

"फिर क्या ? जिसका दाँव लगे मेरी सम्पत्ति लूट ले जाय। मेरी है वह किस बातकी ? मैने वह कब कमाई है ? मै तो कहता हूँ वकील लुटेरे जो चाहें मेरा मकान ले ले, जो चाहें नकदी ले ले। मेरे पास जो भी पहले दस्तखत कराने आयगा, उसीको दस्तखत दे दूँगा। सोचूँगा, बला टली। मेरी किसानीमे यह जायदाद और पैसे भी तो आफत ही डालेगे। फिर क्या मुझे किसानी सूझेगी ? या तो आसाइश सूझेगी, नही तो बहुत हुआ, लेक्चर देना सूझेगा। इस सबसे कुछ भला नहीं होता ! इससे छोडो पैसेका ख्याल। तुम अपनी बच्ची पढानेकी बात सोचो, और हम अपने हल और बैलोंकी। क्यों ?"

"हाँ-आँ !"

"तो ?"

"तो हम अलहदा होते हैं ?"

"हाँ।"

"प्रणाम।"

बिहारीने दोनों जुड़े हाथ थामकर झुके मस्तकपर चुम्बन लिया। कट्टोने प्रणत भावसे उसे स्वीकार किया। और दोनों फिर अलग अलग राह चल दिये। न जाने कब मिलनेके लिए !
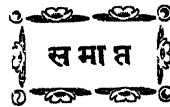
लेखककी अन्य रचनायें

कल्याणी [उपन्यास]		२)
त्यागपत्र	,,	१।)
सुनीता	,,	२॥)
परख	,,	१॥)
सुखदा	,,	४।)
विवर्त्त	,,	४।)
व्यतीत	,,	३॥)
वातायन (कहानियाँ)		२॥)
काम, प्रेम और परिवार (निबन्ध)		३)
प्रस्तुत प्रश्न	,,	४॥)
साहित्यका श्रेय और प्रेय	,,	७)
पापका प्रकाश	,,	२॥)
मन्थन	,,	५)
पूर्वोदय	,,	४)
सोच विचार	,,	५)
जैनेन्द्रकी कहानियाँ (सात भाग) प्रत्येकका		३॥)